योगविद्या

वर्ष 10 अंक 4
अप्रैल 2021
सदस्यता डाकखर्च – रु100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरि: ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2021

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर एवं अन्दर के रंगीन फोटो:

योग चक्र ऑनलाइन सत्संग सत्र

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

हठ योग का महत्त्व

हठ योग आत्म-शोधन के लिए एक सम्पूर्ण प्रणाली है। सुन्दर स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए यह एक दिव्य आशीर्वाद है। शरीर तथा मन यन्त्र हैं। हठ योग के अभ्यास से ये यन्त्र स्वस्थ, मजबूत तथा सशक्त बनते हैं। हठ योग साधक को सुन्दर स्वास्थ्य, दीर्घायु, शक्ति, वीर्य तथा स्फूर्ति प्रदान करता है।

राजयोग के अभ्यास में हठयोग बहुत ही सहायक है। यह तमस् (आलस्य) तथा रजस् (मन एवं शरीर की अशान्ति) को दूर करता है, जिससे उपद्रवी इन्द्रियाँ सुगमता से वशीभूत हो जाती हैं। हठ योगी कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करके मूलाधार-चक्र से सहस्रार-चक्र में ले जाता है जहाँ शक्ति शिव से योग प्राप्त करती है।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 10 अंक 4 अप्रैल 2021
(प्रकाशन का 59 वाँ वर्ष)

विषय सूची

4 विचार और अनुभूति
7 विचारों का स्वरूप
15 योग और मन
25 योग में मानस दर्शन
32 मोह का निराकरण
35 ध्यान की अनुभूति
38 गीता में कर्मयोग और ज्ञानयोग
45 स्वास्थ्य और यौगिक उपचार
51 मन को कैसे शान्त करें?
54 योग की शक्ति

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

विचार और अनुभूति

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

'आप जैसा सोचते हैं, वैसे ही बन जाते हैं' – यह सूक्ति सत्य और सही है। आप अपने को स्वस्थ मानें, आप स्वस्थ बन जायेंगे। आप अपने को दुर्बल मानें तो दुर्बल बन जायेंगे। आप अपने को विद्वान्, महात्मा या परमात्मा मानें, तो वैसे ही बन जायेंगे। इनसे अलग कुछ मानें, तो मूर्ख, दुरात्मा और जीव ही बने रहेंगे। विचारों से ही मनुष्य बनता और बिगड़ता है। हर व्यक्ति का अपना एक वैचारिक जगत् होता है, जिसमें वह निवास करता है। संकल्प में अद्भुत शक्ति है, आप इससे आश्चर्यजनक काम कर सकते हैं। आपने भूतकाल में जैसा सोचा था, आज आप उसी का मूर्त्त रूप हैं। आज जो कुछ आप सोच रहे हैं, आपका भविष्य उसी से बन रहा है। यदि आप मन, वचन और कर्म से सच्चे हैं, तो आपका भविष्य उज्ज्वल है। यदि आप सच्चे नहीं हैं, तो उसका उत्तरदायित्व आप पर है।

बुरे विचार मन में कैसे घर करते हैं? इनका सामना कैसे किया जाये? बुरे विचारों से आप ऊबते प्रतीत होते हैं। ये आपको अप्रिय लगते हैं। बस, यही तो आपकी

आध्यात्मिक प्रगति की पहचान है। बहुतों को इसकी परख नहीं होती। बहुतों का मन इतना अस्त-व्यस्त और सांसारिक दूषणों से ग्रस्त होता है कि उनके लिए मन का सन्तुलन बनाये रखना असंभव हो जाता है। बहुतों की मानसिक प्रवृत्तियाँ इतनी उच्छृंखल होती हैं कि उन्हें नियंत्रित करके शुद्ध विचारों को ग्रहण नहीं कर पाते। बहुतों को बुरे विचारों से परेशानी नहीं होती है। कारण कि उनके मन में इस प्रकार के विचार विरल होते हैं, वे आते हैं, चले जाते हैं, ज्यादा क्षति नहीं पहुँचाते।

पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक और रहस्यवादी, विचारों की पवित्रता पर बहुत जोर देते हैं। विचार-विज्ञान भी अपने आपमें एक विषय है। आपको उत्तम विचारों से सम्पन्न होना चाहिए तथा हीन विचारों से पीछा छुड़ाना चाहिए। यदि आप निकृष्ट विचारों की सृष्टि करते हैं, तो अपना और सारे विश्व का अहित कर रहे हैं। आप विचारों के जगत् में विषाणु फैला रहे हैं। आपके अपावन विचारों से औरों को भी प्रभावित होना पड़ता है, क्योंकि विचारों का भी संचरण होता है, वे भ्रमण करते हैं और जन-मानस को प्रभावित करते हैं। बुरे विचारों से अनेक रोग और शोक उत्पन्न होते हैं, इससे सारे संसार को क्षति पहुँचती है। इसलिए आप मन को उत्तम विचारों से भरें तथा अपना और अपने चारों ओर के जगत् का हित करें। आपके उत्तम विचारों से चारों ओर आनन्द, उल्लास, आश्वासन और सुख-शान्ति का साम्राज्य फैलेगा।

अपने मन को बड़ी सतर्कता से परखिए। आपके मन में राग-द्वेष, विक्षेप, घृणा आदि के भाव अपना सिर न उठा सकें; धारणा, ध्यान और अभ्यास के द्वारा उन्हें परास्त करते रहिए। प्रारम्भ में तो शुभ और अशुभ विचारों में परस्पर संघर्ष छिड़ता है। शुभ विचारों की परिधि में अशुभ विचार धीरे से प्रवेश कर लेता है। पहले वह खुशामद-मिन्नत करके थोड़ी-सी जगह घेरता है और फिर अपना विस्तार करना शुरू करता है। वह धीरे-धीरे सांसारिक चीजों में उसे फँसाता है, फिर उसे पूरी तरह से सांसारिक बना लेता है।

प्रतिपक्ष-भावना के माध्यम से अशुभ विचारों के स्थान पर शुभ विचारों को प्रश्रय दीजिए। यह राजयोग की पद्धति है। इससे अशुभ विचार अपनी जगह शुभ विचारों के लिए छोड़ जाता है, और किसी तरह के द्वन्द्व के बिना आपका मन्तव्य पूरा हो जाता है। मन से बुरे विचारों को 'खदेड़ कर निकालना' बहुत कठिन है। तरीका यही है कि उत्तम विचारों को मन में आने दीजिए, हीन विचारों का कारवाँ अपने-आप अन्यत्र कूच कर जाएगा। इसके लिए आपको लगन, अभ्यास और अध्यवसाय की जरूरत पड़ेगी।

मन की चंचल अवस्था में किसी महापुरुष, देवी या देवता को लक्ष्य बना लेना चाहिए और बार-बार उन्हीं पर मन को टिकाना चाहिए। मन अनेक उछल-कूद मचाकर वहीं पहुँचेगा और कुछ काल के लिए शान्त रहेगा। शान्ति की यह अवधि

धीरे-धीरे बढ़ेगी और अन्त में आपका उच्छृंखल मन हमेशा के लिए शान्त हो जाएगा। आप शान्ति-स्वरूप परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त कर सकेंगे।

अपने मन को स्वयं उपदेश भी दिया जा सकता है। किसी महापुरुष को अपना पथ-प्रदर्शक निर्धारित कीजिए और अपने मन को उनके बताये आदर्शों पर चलने का आदेश दीजिए। यह प्रणाली मन को वशीभूत करने में सहायक होगी। मान लीजिए, किसी ने आपका कुछ अहित कर दिया। आप उससे तुरन्त बदला लेना चाहेंगे। अपने मन को इस समय समझाया जाये कि क्षमा बहुत बड़ा नैतिक गुण है तो यह समझने से रहा। अत: आप ऐसा मत कीजिए। मन को इस प्रसंग से मोड़ने की कोशिश कीजिए। कुछ उपदेश मत दीजिए। सिर्फ अच्छे आदर्श सामने रखिए। महापुरुषों का स्मरण कीजिए और उनके आदर्शों का अनुशीलन कीजिए। बार-बार मन को उन पर लाइए और आप देखेंगे कि आपका मन हिंसात्मक विचारों को छोड़ चुका है।

आप बुरी संगति में रहते हों तो यह संगति छोड़ दीजिए। यदि आप अतीत में बुरे कर्मों में पड़ चुके थे तो उनके बारे में अब सोचना व्यर्थ है। मन को अच्छे उद्देश्य के विषय में समझाइये और उसे अच्छे मार्ग पर लाइए। आत्मानुशीलन, सत्संग, सद्विचार आदि के माध्यम से मन का परिष्कार कीजिए। आपका अतीत आपके लिए बन्धन नहीं है। आप पहले कुछ भी हों, अभी चाहें तो महामानव बन सकते हैं।

अपना उद्देश्य स्पष्ट रूप से सामने रखिए। आपके मार्ग में जो बाधक तत्त्व हों, उन्हें पहचान लीजिए और उनसे सावधान रहिए। तमोगुण को रजोगुण से और रजोगुण को सत्त्वगुण से जीतिए। काम, क्रोध और मोह को प्रेम, क्षमा और विवेक से जीतिए। सुसंगति में रहिए। बातचीत बहुत थोड़ी कीजिए। बहिर्मुखता कोई अच्छा गुण नहीं है। विचारवान् पुरुष सदा अन्तर्मुख होते हैं। ज्यादा मिलना-जुलना या अनावश्यक दोस्ती बढ़ाना जीवन का जंजाल है। एकान्तप्रियता एक उत्तम गुण है। बहुत ज्यादा दोस्ती से बहुत ज्यादा परेशानियाँ ही पैदा होती हैं। वैसे अपने पास-पड़ोस वालों से अच्छा सम्बन्ध रखना उचित ही है। आपसे उनको जरूरत पड़ सकती है, उनसे आपको जरूरत पड़ सकती है। संसार में इतना तो सम्बन्ध रखना ही पड़ता है, लेकिन किसके साथ घनिष्ठ और किसके साथ परिचयात्मक सम्बन्ध रखा जाता है, यह भी सोचने का विषय है। अत: आपको विवेकशील होना पड़ेगा, साथ-ही आपकी एकान्तप्रियता और गंभीर मनोवृत्ति में खलल न पड़े, यह भी सोच लीजिए।

बहुत एकान्तप्रियता भी किसी-किसी को मँहगी पड़ती है। इसलिए धार्मिक सत्संग में जाना अच्छा है। कुछ मार्गदर्शन मिलता रहता है। अन्यथा भय है कि किसी एक विचार को पकड़ कर आप बैठे हों, जो आपके लिए उपयोगी न हो तथा इसके बदले कोई अन्य विचार भी नहीं मिलता है। इसके लिए सदाचारनिष्ठ व्यक्तियों से मिलना-जुलना तथा आध्यात्मिक सत्संग का सेवन करना बहुत आवश्यक है।

विचारों का स्वरूप

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

विचार क्या वस्तु है? मेरे मन में जो विचार है, वह तुम्हें तो नहीं दिखाई पड़ता, लेकिन मुझे मालूम रहता है। इसके अलावा बहुत-से विचार ऐसे भी हैं, जो हमारे मन में होते हैं, पर हमें खुद मालूम नहीं पड़ता। उनका पता हमारे कर्मों से लगता है। हममें घृणा है, लेकिन वह विचार छुपा हुआ रहता है। उसको दमित या गुप्त विचार कहते हैं। एक हुआ प्रकट विचार, जो हमें मालूम है और एक हुआ गुप्त विचार, जो बीज रूप में होता है और अन्य विचारों का मूल होता है। जैसे गेहूँ के बीज से अंकुर निकला, तो वह उसका प्रकट स्वरूप है, मगर बीज में वह अंकुर नहीं दिखता। इस बीज को हम संस्कार कहते हैं।

संस्कार चक्र

संस्कार से वासना पैदा होती है, वासना से विचार पैदा होते हैं, विचारों से फिर क्रिया पैदा होती है। संस्कार बीज रूप में होता है। हमारे यहाँ ऐसा माना जाता है कि संस्कार माता-पिता से बच्चे को मिलता है। इसका मतलब यह हुआ कि माता-पिता के द्वारा एक शारीरिक प्रक्रिया हुई, जिससे संस्कार पड़ा। चाहे माँ के शरीर से, चाहे पिता के वीर्य से, कहीं से तो बच्चा बना न? उसमें शारीरिक पक्ष तो आ गया। यह संस्कारों का शारीरिक पक्ष हुआ, मगर हमारे यहाँ इसके अलावा एक

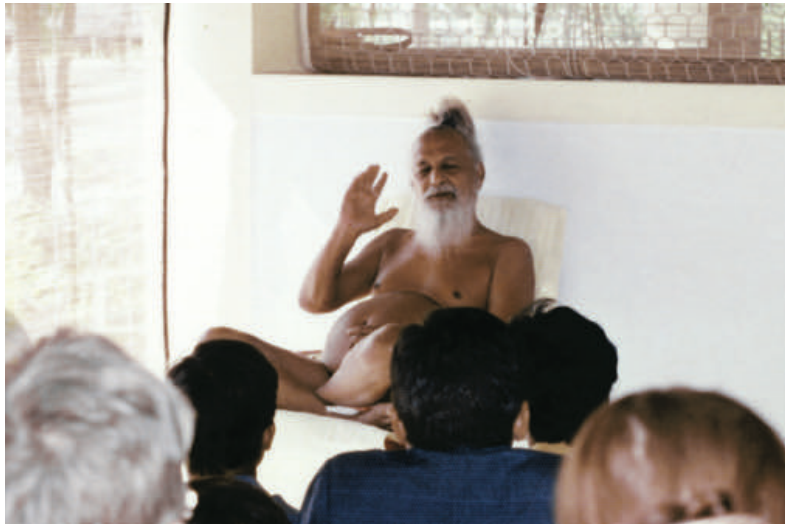

बात और कहते हैं कि गर्भाधान के तीन महीने के बाद आत्मा का प्रवेश होता है। माने मकान बनने के तीन महीने बाद उसका मालिक उसमें आता है। इस जीवात्मा के संस्कार माता-पिता के संस्कार नहीं हैं, अलग से लाया है यह अपने साथ। तो संस्कार के दो रूप हो गए – एक संस्कार तो माता-पिता द्वारा बच्चे को मिला, वह शारीरिक हुआ। दूसरा संस्कार वह जो उसकी आत्मा अपने साथ लायी है।

वह आत्मा न तो माँ की है, न ही पिता की। जब हम मर जायेंगे तब हमारी जीवात्मा किसी के गर्भ में प्रवेश करेगी न? तब हम अपने ये संस्कार लेकर जायेंगे। साधु हैं तो साधु का संस्कार लेकर जाएँगे, भिखारी हैं तो भिखारी का संस्कार लेकर जाएँगे, चोर हैं तो चोर का संस्कार लेकर जाएँगे। माने जो आज मैं हूँ, वही संस्कार लेकर जाऊँगा मरने के बाद।

रासायनिक पक्ष

मन में जब कोई विचार आता है, तब शरीर में एक रासायनिक प्रक्रिया होती है। इसी तरह शरीर के रसायनों का भी विचारों पर प्रभाव पड़ता है। मान लो, तुम थोड़ी शराब पी लेते हो, वह शराब तुम्हारे शरीर में जब मिलती है, तब तुम्हारे अन्दर रासायनिक परिवर्तन लाती है। तुम्हारे मन में बड़े अजीब विचार भी आते हैं। जो पीने वाले हैं, वे इसे अच्छे से जानते हैं। कई लेखक और कलाकार कोकेन लेते हैं। वे लोग नाक से इसे खींचते हैं, क्योंकि यह एक ऐसा रसायन है जो दिमाग को प्रभावित कर उसे उठाता है, उसकी प्रतिभा को बढ़ाता है।

रसायनों का मनुष्य के विचारों पर असर होता है, यह पक्की बात है। चाहे वह शराब हो, गांजा हो, कोकेन हो या एल.एस.डी. हो। बहुत से रसायनों का तो हमारे पूर्वजों को भी पता था। उन रसायनों को अगर शरीर में डाल देंगे, तो उससे विचार जरूर प्रभावित होंगे, पर बहुत थोड़ी देर के लिए।

विषय और विचार

विचार मनुष्य के अंदर एक प्रतिभा है, जो वस्तु को देखकर पैदा होती है। किसी को देखकर मेरे मन में प्रेम का विचार पैदा हुआ, किसी को देखकर विचार आया कि यह व्यक्ति तो नेता है। विचार एक प्रतिक्रिया होती है। विषयों से विचारों को बल मिलता है। शब्द, रूप, स्पर्श, रस और गंध, इन पाँच विषयों से पाँच इन्द्रियों को संवेदना मिलती है और यह संवेदना मन में जाती है, जिससे विचार पैदा होता है, ज्ञान पैदा होता है। ज्ञान और विचार, दोनों का एक ही अर्थ होता है।

आनुवंशिक विज्ञान में ऐसा मानते हैं कि मनुष्य के मस्तिष्क में एक जगह छेद होता है। जब कोई प्रतिक्रिया होती है तब मस्तिष्क का वह दरवाजा खुलता है, जीन का प्रवेश होता है और फिर वह बन्द हो जाता है। हर जीव में, चाहे वह गधा हो,

गाय, घोड़ा अथवा हाथी हो, सबमें यह क्रिया होती है और यह जीन्स की वजह से होती है। जैसे ही कहीं चीनी गिरेगी, वैसे ही चींटी को पता चल जाएगा। उतनी देर तक उसका वह दरवाजा खुलता है और जीन का प्रवेश होता है। फिर दरवाजा बन्द हो जाता है। उसको उतना ही पता चलेगा, चीनी की गंध। इसी तरह, आम खाओगे तो मक्खी तुरंत आएगी, क्योंकि ठीक उसी वक्त उसके मस्तिष्क में जो दरवाजा रहता है, जिसको बोध का द्वार भी कहते हैं, वह खुलता है, उसमें जीन का प्रवेश होता है, फिर वह बन्द हो जाता है।

इन्सान का वह दरवाजा खुलता और बन्द होता रहता है। इसलिए हमको निरन्तर ज्ञान होता है। बोध के दरवाजे से विषय का ज्ञान अन्दर जाता है और उसकी फिर वहाँ अच्छी तरह से जाँच-पड़ताल होती है। उतनी देर तक दरवाजा बंद रहता है, फिर खुल जाता है। मनुष्य का बोध का द्वार अधिकतर खुला रहता है। निद्रा में थोड़ी देर के लिए बन्द होता है या कभी-कभी थकावट होने से बन्द हो जाता है, फिर खुल जाता है। जीन्स का आर-पार होना चलता रहता है, इसलिए हमारी जानकारी की जो परम्परा है, यह एक निरन्तर परम्परा है। हम केवल चीनी को नहीं देखते, सभी चीजों को पहचानते हैं। मनुष्य को शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श, विचार, घृणा, द्वेष, सबका पता चलता है।

विचारों का विकिरण

केवल यही नहीं, इस बात को हमेशा याद रखना चाहिए कि जिस प्रकार बिजली के बल्ब से प्रकाश का विकिरण होता है, अग्निकुण्ड से उष्मा का विकिरण होता है, किसी गंदी चीज से दुर्गंध का विकिरण होता है, उसी तरह मनुष्य के मन से विचारों का विकिरण होता है। आपके विचार मुझ तक जरूर पहुँचते हैं और मेरे विचार भी आप तक जरूर पहुँच रहे हैं। यह प्रकृति का नियम है। विचार एक तरंग है, चाहे प्रेम की तरंग हो या वासना, घृणा, चिन्ता अथवा भय की। इन विचार तरंगों को तुम बराबर निकाल रहे हो। मगर कोई भी इसको पकड़ नहीं सकता, क्योंकि प्रकृति माता ने इसे 'पेड चैनल' करके रखा है, इस पर ताला लगा रखा है। किसी को आपके विचारों का पता नहीं चलेगा, आपको कभी दूसरे के विचारों के बारे में मालूम नहीं पड़ेगा। अंदाज लगा लोगे कि सामने वाला व्यक्ति गुस्से में है या खुश है, लेकिन उसके वास्तविक विचार नहीं पकड़ पाओगे, क्योंकि वह 'डीकोडर' आपके पास है ही नहीं।

अगर प्रकृति ताला नहीं लगाती, तो अभी तक हमलोगों के बीच झगड़ा हो जाता। पता नहीं आप हमारे बारे में क्या सोच रहे हैं या हम आपके बारे में क्या सोच रहे हैं। भाई-भाई के बारे में क्या सोच रहा है, पति पत्नी के बारे में क्या सोच रहा है, पत्नी पति के बारे में क्या सोच रही है, दिन-भर झगड़ा ही होता रहता।

इसलिए इसको प्रकृति ने बन्द करके रखा है और कह रखा है, 'बेटा, यह लाइसेन्स तुमको तभी देंगे जब तुम घृणा, हिंसा और दूसरे का अहित करना बंद कर दोगे।' कोई अगर तुमको गाल पर थप्पड़ मारे तो भी तुम जवाब नहीं दोगे। जिस दिन मनुष्य ऐसा सच्चा संत हो जाता है, उस दिन उसको यह डीकोडर मिल जाता है।

अगर मैं तुमको मन-ही-मन गधा कहता हूँ और तुमको पता चल जाए तो तुम बहुत बिगड़ोगे। क्यों बिगड़ोगे? क्या मेरे गधा कहने से तुम गधे हो गए? नहीं, तुम गधे नहीं हो गए, तुम्हारे अहंकार को चोट लगी। मूलतः आदमी का जीवन अहंकार-केन्द्रित रहता है। लेकिन एक दिन तुमको ज्ञान हो जाए, तब चाहे कोई तुम्हें गधा कहे, चूहा कहे, जीवनमुक्त कहे या भगवान कहे, तुम सोचोगे बोलने दो। जब ऐसी अवस्था हो जाती है तब आदमी यह सोचता है कि दूसरे आदमी के मेरे बारे में जो विचार हैं, वे उसके विचार हैं, मेरा उनसे कोई सम्बन्ध नहीं। ऐसी अवस्था में फिर वह किसका बुरा माने, किसको जवाब दे? ऐसे संत-महापुरुष दुनिया में कभी-कभी जरूर पैदा होते हैं जो सारे संसार को प्रेम की दृष्टि से ही देखते हैं। सभी जीवों, प्राणियों और दुष्टों के प्रति प्रेम-भाव रखते हैं। उनके मन में किसी के प्रति राग, द्वेष या हिंसा का भाव नहीं आता। उनको किसी को ठगने की जरूरत नहीं। ऐसे लोगों को हम संत कहते हैं। संत का मतलब होता है, वह जो किसी रूप में कोई प्रभाव ग्रहण नहीं करता। चाहे तुम मेरी पूजा करो या मुझे गाली दो, कोई फर्क नहीं पड़ता।

यदि विचार सचमुच तरंगों के रूप में मेरे पास आ रहे हैं, तो मैं उनको पकड़ क्यों नहीं पा रहा हूँ? तुम कहीं आग लगाकर आए हो तो हमको पता चल जाएगा। कैसे? इसलिए कि मेरी घ्राण इन्द्रिय जागृत है। हमको कैसे पता चलता है कि तुम

गोरे हो या काले, तुम्हारा चेहरा गोल है या अण्डाकार, तुम सुन्दर हो या कुरूप? मेरी रूप को जानने वाली इन्द्रिय जागृत है। हमको कैसे पता चलता है कि गर्मी है या ठण्ढी? स्पर्श से पता चलता है। ठण्ढी लगी तो स्वेटर आ जाता है, गर्मी लगी तो स्वेटर उतर जाता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध को जानने वाली इन्द्रियाँ तुम्हारे अंदर जागृत हो गई हैं, इसलिए तुम उनकी तरंगों को पकड़ते हो। मान लो, तुम शराब पीकर आए हो। मेरे को यहाँ गंध मिल गई, क्योंकि मेरी इन्द्रियाँ जागृत हैं और गंध ने तुम से लेकर मेरी नाक तक सफर तय किया। रूप, शब्द, स्पर्श, ये सब चीजें सफर तय करती हैं। ये कितनी दूर तक जा सकती हैं, यह स्रोत की प्रबलता पर निर्भर रहता है।

योग में कहते हैं कि हर व्यक्ति का एक क्षेत्र होता है, जहाँ तक उसका विचार जा सकता है, उसके आगे नहीं। इसे समझना बहुत जरूरी है। हर आदमी के विचार कुछ दूरी तक सफर तय करते हैं, उसके बाद वे खत्म हो जाते हैं। जैसे गंध खत्म हो जाती है, गर्मी खत्म हो जाती है, वैसे ही तुम्हारे मन में जो विचार उठा वह कुछ दूरी तक गया, उसके बाद वह गायब हो जाता है, रहता नहीं है। मगर कुछ लोगों के विचार ऐसे होते हैं, जो महीनों, सालों, शताब्दियों तक रहते हैं। उसी आधार पर लोग किसी स्थान के बारे में कहते हैं कि यहाँ तो संत-महात्मा रहते थे, उनका बनाया हुआ वातावरण है। इसको हम क्षेत्र कहते हैं। यह क्षेत्र दो प्रकार का होता है, धर्म क्षेत्र भी होता है और अधर्म क्षेत्र भी। जो व्यक्ति कंस, रावण, रास्पूतिन या हिटलर जैसे होते हैं, वे भी एक क्षेत्र का निर्माण करते हैं। जो भी चीज प्रबल होती है, वह एक क्षेत्र का निर्माण करती है।

मनुष्य के अंदर जैसे शब्द, स्पर्श, रस, गंध और रूप की इन्द्रियाँ हैं, वैसे ही विचारों को पकड़ने की एक इन्द्रिय भी उसमें है। दूसरे के विचारों को पकड़ने के लिए जो इन्द्रिय है, उसका नाम है हृदय। यहाँ हृदय का अर्थ शारीरिक हृदय से नहीं लगाना। लोग कहते हैं न कि किसी का दिल बड़ा खराब है, किसी का दिल बड़ा साफ है। यह साफ दिल क्या है? वह दिल नहीं जिसको हृदयाघात होता है। अंदर में आकाश या शून्य की तरह कोई जगह है, यहाँ हृदय का मतलब उससे है। उपनिषदों में लिखा है – हृदि अयम् आकाशः हृदयाकाशः। हृदि का मतलब होता है गहरी जगह। इस गहराई में जो आकाश है, वह हृदयाकाश है। अब वह जगह है कहाँ?

ऐसा सुनने में आता है कि हृदय से भावों और विचारों का जो संचार होता है, वह पशुओं में अधिक होता है। अटलांटिक महासागर की डॉलफिन मछली अपना प्रेमसंदेश प्रशान्त महासागर की डॉलफिन को भेजती है। कैसे भेजती है? हम कुत्तों को देखते हैं। हमारा कुत्ता है भोले, वह भैरवी को कहता है तू अंदर नहीं आ सकती, दरवाजे पर खड़ी रह। वह दौड़ कर आती है, लेकिन खट् से दरवाजे पर रुक जाती है। गाय, घोड़ा इत्यादि सब एक-दूसरे को बिना बोले हुए हृदय से

हृदय तक बातचीत करते हैं। एक पशु दूसरे पशु के विचार पढ़ सकता है, यह पक्की बात है। पर मनुष्य दूसरे मनुष्य के विचार पढ़ नहीं पाता है, क्योंकि वह इस कला को या तो खो चुका है या उसे इसे विकसित करना होगा।

वैसे इस बात को हमेशा याद रखो कि इस छः अरब की दुनिया में दूसरे के विचारों को पढ़ने की शक्ति अगर किसी में आ जाय तो दुःख घटेगा नहीं, बढ़ेगा! विचारों को पढ़ना अंदाज लगाना नहीं होता, वह एकदम स्पष्ट होता है। हम दो-तीन साधु-महात्माओं से मिले हैं, वे मेरे विचारों को किताब की तरह पढ़ सकते थे, बड़ा डर लगता था! हम लोग जब संन्यास लेते हैं तब पाँच गुरु रहते हैं। उनमें से एक गुरु दीक्षा देता है, बाकी चार साक्षी होते हैं। वे अखाड़े के गुरु और आचार्य होते हैं। उन चार में से मेरे एक गुरु राजस्थान में रहते हैं, उम्र में वे मुझसे बहुत बड़े हैं। यहाँ आने के पहले हम उनके पास गए थे। उन्होंने हमको बनारस में किसी के पास भेजा कि तुमको आगे की जिन्दगी किस तरह बितानी चाहिए, वे बतलाएँगे तुमको। उन्होंने हमसे कहा, 'वहाँ बहुत होशियारी से विचार करना, क्योंकि वे महात्मा एक आइने की तरह हैं। तुम्हारी पूरी की पूरी छाया उनके दर्पण में आ जाती है! बहुत सावधानी से उनसे बात करना।' मैंने कहा, कोई बात नहीं, क्योंकि मैं जीवन में हमेशा सच्चा और निष्कपट रहा हूँ। बनारस के उन महात्मा के यहाँ हम एक-दो दिन रहे। हम अपने मन में सोचते थे कि आज यह बात पूछेंगे, कल वह बात पूछेंगे, लेकिन सबेरे पूछने की जरूरत ही नहीं पड़ती थी। वे हमसे मिलते थे और बराबर हमारे अनकहे सवालों का जवाब देते जाते थे!

विचार और वृत्ति

कहने का मतलब यह कि ऐसे लोग भी हैं। मैं आपको यह बता रहा हूँ कि आप विचारों को केवल व्यक्तिगत मत मानिए। व्यक्तिगत माने अंदर की चीज। विचार केवल रसायन की चीज नहीं, विचारों का सम्बन्ध जीवात्मा से, संस्कार से और माता-पिता की दी हुई जीन्स से होता है। इन्हीं विचारधाराओं पर सारा योग केन्द्रित है, योगविद्या का मूल क्षेत्र यही है। योगविद्या में विचारों को विचारों के रूप में नहीं देखते, उनको काटते हैं, उनका विश्लेषण करते हैं। अलग-अलग विचारों को पहले वृत्तियों के रूप में काटते हैं। विचार कैसे पैदा होता है? विचार का सूक्ष्मरूप क्या है? किसी शान्त तालाब में एक-दो कंकड़ डालो तो गोल-गोल तरंगें उठती हैं। वह वृत्ति है। उसी तरह से तुम्हारी आत्मा निर्मल, शान्त, निरंजन और अवधूत है, उसमें कुछ हलचल नहीं होती। लेकिन उसमें एक कंकड़ डाला इच्छा का, तो गोल तरंग उठ गई। उसको चित्तवृत्ति कहते हैं और उसी को रोकना योग कहलाता है।

मनोविज्ञान में इस बात को समझाया है कि बहुत-से लोग जब विचार करते हैं तब विचार उनके सामने एकदम स्पष्ट आते हैं। लेकिन क्या आपने कभी सोचा

है कि विचारों का असली रूप क्या होता है? क्या वे किसी भाषा के शब्द के रूप में आते हैं कि मुझे हरिद्वार जाना है या मुझे बाजार से सब्जी लानी है या मुझको पैसा बैंक में जमा करना है या शाम को नौकर आएगा उसको दो झापड़ मारना है। आखिर विचार किस रूप में आते हैं?

आधुनिक विज्ञान के अनुसार अगर इसको समझाऊँ तो शायद आपको ज्यादा समझ में आएगा। जब आप यहाँ किसी व्यक्ति का वीडियो लेते हैं और वह फिल्म में अंकित हो जाता है तब वह कौन-सी क्रिया होती है? वह कौन-सा सिद्धान्त है जिसके अनुसार एक व्यक्ति की चलती या स्थिर छाया उसमें अंकित हो जाती है। और उसके बाद जब आप उस छाया को अमेरिका या इंग्लैण्ड उपग्रह से भेजते हैं तब वह कैसे जाती है? क्या सचमुच यह शरीर जाता है? क्या शरीर के अंदर के रसायन जाते हैं? नहीं। ये तरंगें होती हैं और ये तरंगें या तो एनालॉग होती हैं या फिर डिजिटल। आप किसी भी रूप या ध्वनि को डिजिटल तरंग में रूपान्तरित करके उसको भेज सकते हो। मूल में तो मैं यहाँ हूँ, वहाँ जो तस्वीर में छपा है, वह मेरा डिजिटल रूप होता है।

उसी प्रकार जो विचार हमारे मन में आते हैं, वे अलग-अलग अनुभवों के रूप में आते हैं। हर विचार एक तरंग के रूप में उत्पन्न होता है। पहली बात यह मान कर चलो। मान लो, तुम्हारे मन में यह विचार आया कि तुमको अभी जाकर स्वामीजी के दर्शन करने हैं। यह तो तुमने शब्दों के रूप में व्यक्त किया, मगर यह विचार का मूल स्वरूप नहीं है। तुम्हारे मन में विचार तो यही था, मगर उस वक्त इसका रूप दूसरा था। वह तरंग के रूप में था। बाद में उसने शब्दों का रूप धारण

किया। विचारों का जो मूल रूप है, वह तरंग या वृत्ति के रूप में होता है। योग में उसको वृत्ति कहते हैं और आधुनिक विज्ञान उसको तरंग कहता है। यह बहुत गहरा सिद्धान्त है, सारा योग शास्त्र इसी पर आधारित है।

मनोनिग्रह और एकाग्रता

मनुष्य के मन में जो भी विचार उत्पन्न हो, उसे रोकना चाहिए। लेकिन पन्द्रह मिनट या आधा घण्टा रोज, दिनभर नहीं। दिनभर तो दुनिया के साथ जो चक्कर चलता है, चलाओ। मगर रोज आधा घण्टा या पन्द्रह मिनट, चाहे बैठकर या लेटकर, मन में जो भी विचार आए, उसको अपने अंदर जागने ही मत दो। ध्यान से देखते रहो, कौन-सा विचार आया। चिन्ता का विचार, हटा दो; बेटे का विचार, हटा दो; घर का विचार, हटा दो। यह एक तरीका है। इसको कहते हैं नकारात्मक तरीका। माने जबरदस्ती तुम विचारों को रोको। लेकिन इसका सकारात्मक तरीका भी होना चाहिए। आखिर जब तुम किसी को अंदर आने से रोक रहे हो, तब हमेशा दरवाजे पर क्यों खड़े रहते हो? वह दरवाजा ही बंद कर दो। बस काम खत्म, कोई नहीं आएगा। इसलिए महात्मा लोग कहते हैं कि जब मन में विचार आए, तब उस समय तुम एक काम करो, अपने मन को कहीं लगा लो। कहाँ लगाओगे? मन को लगाने के लिए तो पौने दो करोड़ जगहें हैं। एक बार पार्वती जी ने शंकर जी से यह प्रश्न पूछा। भगवान शंकर ने पार्वती से कहा, 'देवी, मन को लगाने के लिए कोई एक उपाय तो है नहीं, सवा लाख उपाय हैं। चलो एक उपाय बतला देता हूँ।' और वह उपाय हम लोगों के यहाँ 'विज्ञान भैरव तंत्र' के नाम से जाता जाता है।

मन को लगाने के अनेक उपाय हैं। श्वास पर ध्यान लगाओ, भ्रूमध्य में ध्यान लगाओ, किसी मंत्र पर ध्यान लगाओ, कीर्तन-भजन में ध्यान लगाओ, किसी ताल पर ध्यान लगाओ, किसी राग में ध्यान लगाओ, किसी रूप पर ध्यान लगाओ, किसी मूर्ति में ध्यान लगाओ, सद्विचारों में ध्यान लगाओ। निर्भर करता है कि तुम्हारे लिए कौन-सा सहज पड़ेगा। विचारों का निग्रह और एकाग्रता, ये दोनों तरीके होने चाहिए। इन दो तरीकों को सिद्ध करने पर दिक्कत भी आती है, क्योंकि जब तक तुम अपने मन से ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, भय, वासना जैसी सभी चीजों को दूर नहीं करोगे, तब तक तुम जितनी शक्तियाँ अर्जित करोगे वे कष्ट का कारण बनेंगी, सुख का नहीं। इसलिए हम लोगों के यहाँ जो महात्मा सिद्ध हुए हैं, वे बहुत कष्ट में रहे हैं। उन्हें बहुत दुःखभरी जिन्दगी बितानी पड़ती है, क्योंकि उनका आधारभूत परिष्कार नहीं होता है। मनुष्य को पहले मनुष्य बनना चाहिए। उसकी पशुता खत्म होनी चाहिए। क्रोध, घृणा और भय तो पशुता है, उसको पहले खत्म करो और मनुष्य बनो, उसके बाद जो भी तुमको मिलेगा, वह आशीर्वाद बन जाएगा।

– 5 सितम्बर 1999, रिखियापीठ

योग और मन

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

तंत्र और योग दर्शन में शिव और शक्ति इस सृष्टि के दो मौलिक तत्त्व माने गए हैं। वस्तुत: ये दो तत्त्व चेतना और ऊर्जा ही हैं। प्राचीनकाल के मनीषी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जब ये दोनों तत्त्व एक साथ सामंजस्य की स्थिति में रहते हैं तब कोई सृजन-कार्य नहीं होता। उस समय केवल सत्, चित् और आनन्द की शुद्ध अवस्था रहती है। सृष्टि उस समय होती है, जब शिव और शक्ति अर्थात् चेतना और ऊर्जा एक-दूसरे से अलग होकर स्वतंत्र रूप से क्रियाशील हो जाते हैं। यह सारा भौतिक जगत् शिव से स्वतंत्र हुई शक्ति की गतिविधियों का ही परिणाम है।

शिव और शक्ति की भूमिकाएँ

जब शिव और शक्ति एक-दूसरे से अलग होते हैं, तब ब्रह्माण्ड की साम्यावस्था भंग हो जाती है। शिव और शक्ति की स्वतंत्र पहचान बन जाती है, दोनों की भूमिकाएँ पृथक् हो जाती हैं। जब शक्ति शिव से अलग होती है तब सृष्टि प्रारम्भ होती है। पर सृष्टि में शिव को भी एक भूमिका निभानी पड़ती है। शक्ति स्वयं सृष्टि-कार्य में अक्षम है, क्योंकि शक्ति में दृष्टि या समझ नहीं होती। शिव में दृष्टि तो है पर वह कर्म करने में अक्षम है, क्योंकि उसमें ऊर्जा नहीं है, वह मात्र 'अस्तित्व' की अवस्था है। इस

संदर्भ में प्राय: एक अंधे और एक लंगड़े आदमी का उदाहरण दिया जाता है, जो किसी मेले में जाना चाहते हैं। लंगड़ा आदमी अंधे के कंधे पर सवार होकर उसका मार्गदर्शन करता है और अन्तत: दोनों अपने गन्तव्य पर पहुँच जाते हैं। इसी प्रकार शिव और शक्ति सृष्टि-संरचना में एक-दूसरे का सहयोग करते हैं।

सृष्टि में शिव का योगदान सूक्ष्म रहता है, जो महत् के रूप में प्रकट होता है। महत् के चार भाग हैं – अहंकार, चित्त, बुद्धि और मनस्। यह है शिव की भूमिका। शक्ति पंच-भूतों और पंच-तन्मात्राओं के सृजन के लिए उत्तरदायी है। प्रत्येक भौतिक वस्तु शक्ति द्वारा ही रची गई है। वह पंच-तत्त्वों का सृजन करती है, और इन तत्त्वों के आपसी संयोग से अनगिनत ब्रह्माण्ड और असंख्य प्राणी उत्पन्न होते हैं। स्वयं मनुष्य-शरीर भी पंच-तत्त्वों के संयोजन का परिणाम है। इन्द्रियों और इन्द्रिय-विषयों की सृष्टि का कारण भी शक्ति ही है। महत् के प्रादुर्भाव के बाद शिव की भूमिका समाप्त हो जाती है। महत् सूक्ष्म सृष्टि है, और स्थूल सृष्टि की रचयिता शक्ति है।

मानव मन की विशेषताएँ

यदि सृष्टि पाँच तत्त्वों से बनी है, तो यह शरीर भी पाँच तत्त्वों से बना होना चाहिए। तात्पर्य यह कि शक्ति ने प्रत्येक प्राणी को अपने प्राकृतिक वातावरण में जीने के अनुकूल रचा है। ब्रह्माण्ड में अनेक आयाम हैं जहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के प्राणी जीते हैं। यह आवश्यक नहीं कि उनका हमारे जैसा ही शरीर हो, वे सूक्ष्म शरीर और ऊर्जा से भी युक्त हो सकते हैं। जब कोई प्राणी अपने वातावरण में जीने हेतु अनुकूलित हो जाता है, तब महत् तत्त्व या महामन सक्रिय हो जाता है और उसके विशेष गुण अपना काम करने लगते हैं।

अहंकार – महत् का पहला गुण है अहंकार। जब अहंकार सक्रिय होता है, तब 'मेरा अस्तित्व है', 'मैं यह हूँ' – इस भाव का बोध हो जाता है। स्वयं की यह पहचान अहंकार की प्रथम अभिव्यक्ति है। 'मेरा' एक प्राणी के रूप में, एक व्यक्ति के रूप में 'अस्तित्व है', यह सजगता अहंकार की पहचान है। अहंकार की अन्य सभी अभिव्यक्तियाँ आत्म-रक्षा की मूल प्रवृत्ति से उभरती हैं। इसलिए आत्म-रक्षा की मूल प्रवृत्ति सबसे प्रबल होती है।

आत्म-रक्षा अपने शरीर, मन, परिवार और समाज की रक्षा है। कोई नहीं चाहता कि उसका घर गिर जाय, उसका शरीर अस्वस्थ हो, उसका परिवार या समाज विपत्ति में पड़े। जब सभी ओर आरोग्य, शान्ति और सौम्यता रहती है तब सभी व्यक्ति संतुष्ट हो जाते हैं। लेकिन जब व्यक्तिगत या सामाजिक समस्या रहती है, तब मानव मन व्यथित हो जाता है। यह अहंकार की ही एक अभिव्यक्ति है। ऐसी सभी मूल-प्रवृत्तियाँ जिनपर तुम्हारा नियंत्रण न हो, जिनका तुम सही दिशान्तरण न कर सको, अहंकार की अभिव्यक्तियाँ हैं, जिनका प्रयोजन मात्र आत्म-तुष्टि है।

मूल प्रवृत्तियाँ चार हैं – आहार, निद्रा, भय और मैथुन। आहार का तात्पर्य केवल भोजन से नहीं बल्कि सभी प्रकार की लालसाओं से है। आहार का आधार है अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति। मनुष्य की दो मुख्य आवश्यकताएँ होती हैं – शरीर के पोषण हेतु भोजन-पानी और मन के पोषण हेतु सुख-शांति। वैसे तुम किसी भी वस्तु से आसक्त होकर उसकी लालसा कर सकते हो, पर वह लालसा आत्म-रक्षा की लालसा से भिन्न होगी। संसार में मनुष्य शारीरिक और मानसिक आहार के बिना नहीं जी सकता। इसलिए अहंकार की प्रथम प्रतिक्रिया है आहार। तुम्हारे शरीर का पोषण हो, मन का पोषण हो, सुखी बनो और जानो कि 'यह' तुम हो – ऐसी स्थिति में ही तुम सुखी, स्वस्थ, विश्रान्त और संतुष्ट होते हो।

चित्त – महत् का दूसरा आयाम है चित्त। यह मन का वह गहन क्षेत्र है जहाँ अतीत के संस्कार संचित हैं। चेतना का विकास अनवरत रूप से चलता रहता है। तुम्हें वर्षों पुरानी या अपने बचपन की घटनाएँ भी याद रहती हैं। अपने जीवन की प्रत्येक अवस्था में तुम स्मृतियाँ एकत्र करते जाते हो, जो तुम्हारे मस्तिष्क रूपी कम्प्यूटर की 'हार्ड डिस्क' में संचित होती जाती हैं। कभी इन स्मृतियों तक सरलता से पहुँचा जा सकता है तो कभी बहुत खोजने के बाद, क्योंकि तुम उन स्मृतियों का उपयोग अक्सर नहीं करते। जब चेतना पर पड़े प्रभाव देर तक कायम रहते हैं, तब वे कालान्तर में संस्कार और कर्म बन जाते हैं। भूतकाल की स्मृतियाँ भविष्य में कर्म या संस्कार रूप में प्रकट होती हैं। इस तरह हम देखते हैं कि जहाँ एक ओर मूल प्रवृत्तियाँ अहंकार का परिणाम हैं, दूसरी ओर कर्म, संस्कार और वासनाएँ चित्त का परिणाम हैं।

बुद्धि – यह महत् का तीसरा पक्ष है, जो मनुष्य को उसके वातावरण से जोड़ता है। पहले वातावरण की पहचान होती है, उसके बाद उसे स्वीकार या अस्वीकार किया जाता है। यहाँ बुद्धि का तात्पर्य उस आधारभूत क्षमता से है जो प्राणी का वातावरण से तादात्म्य स्थापित करती है, इन्द्रियों और इन्द्रिय-विषयों के बीच तादात्म्य स्थापित करती है, मन और संसार के बीच सम्बन्ध जोड़ती है। बुद्धि की यही मुख्य भूमिका है।

मान लो तुम माइक्रोफोन जैसी किसी वस्तु का स्पर्श करते हो। तुम्हारी व्यक्तिगत इन्द्रियाँ एक बाह्य वस्तु के सम्पर्क में आ जाती हैं। बुद्धि ही उस वस्तु का विशलेषण करके निर्णय लेती है कि वह वस्तु कठोर है या कोमल, शीतल है या गर्म, बड़ी है या छोटी। हर विषय-वस्तु का ऐसा ज्ञान बुद्धि द्वारा ही प्राप्त होता है। किसी वस्तु को देखने पर भी यही प्रक्रिया होती है। अगर तुम किसी व्यक्ति को देखो और उस समय वहाँ बुद्धि न रहे तो तुम्हें मालूम ही नहीं चलेगा कि तुम किसी व्यक्ति को देख रहे थे या खाली दीवार को। बुद्धि के कारण ही तुम जिस वस्तु को देख रहे हो उसे एक व्यक्ति के रूप में पहचान पाते हो। इन्द्रियों का मार्गदर्शन बुद्धि द्वारा ही होता है। जब इन्द्रियाँ और बुद्धि साथ आती हैं तभी बाह्य जगत् का ज्ञान होता है।

मनस् – मनस् महत् का चौथा घटक है। इसकी भूमिका सीमित होती है, क्योंकि यह अहंकार, चित्त और बुद्धि के संदेशों और निर्देशों के बिना नहीं रह सकता। मनस् इन तीनों द्वारा प्रेषित संदेशों पर मनन करता है। इसके परे इसकी कोई भूमिका नहीं। उन्हीं चीजों पर चिन्तन-मनन किया जाता है जो अहंकार, बुद्धि और चित्त के कारण मनस्-क्षेत्र में प्रकट होती हैं। जब तुम सोचते हो, तो किस चीज के बारे में सोचते हो? वह विचार कहाँ से आया है? वह विचार या तो अहंकार से, या बुद्धि से या चित्त से आया है और उसी पर तुम मनन कर रहे हो।

अगर कोई व्यक्ति तुम्हें हानि पहुँचाता है, तो अहंकार ही तुमसे कहता है कि इस व्यक्ति ने तुम्हें हानि पहुँचाई है और तुम्हें प्रतिक्रिया करनी है। अहंकार से मिले संदेश के कारण ही मनस् उस हानि और उसकी उपयुक्त प्रतिक्रिया के बारे में सोचता है। रुपये-पैसे के फेर में लगे व्यक्ति के मनस् में संदेश बुद्धि से आयेगा और तत्पश्चात् मनस् उस पर सोचेगा। इसी प्रकार चित्त एक पुरानी स्मृति लाकर आपके समक्ष रख सकता है और फिर मनस् उसी के विषय में सोचना प्रारम्भ कर देगा। इस तरह मनस् उन्हीं गतिविधियों को अभिव्यक्त करता है जो अहंकार, बुद्धि और चित्त के क्षेत्र में घटती हैं।

निम्नतर और उच्चतर मन

शिव तत्त्व में अहंकार, बुद्धि, चित्त और मनस्, ये चार क्षमताएँ सन्निहित हैं। जब ये क्षमताएँ सांसारिक विषय-वस्तुओं से सम्बन्धित होती हैं, तब संयुक्त रूप से निम्नतर मन कहलाती हैं। जब ये इन्द्रिय-विषयों के बन्धन से मुक्त हो जाती हैं तो उच्चतर मन बन जाती हैं।

यह एक कमरे में बन्द होने के समान है। जब तुम कमरे की चार दीवारों तक सीमित हो जाते हो, तब केवल कमरे का ही प्रत्यक्ष ज्ञान रह जाता है। बाहर क्या हो रहा है, इसकी जानकारी नहीं होती। जब तुम कमरे से निकलकर बाहर आते हो

तब उन्हीं इन्द्रियों और मन का उपयोग करते हो पर अब तुम्हारी दृष्टि, जानकारी और समझ बदल जाती है। सीमित और मुक्त, इन दोनों अवस्थाओं में मन और इन्द्रियों का व्यवहार भिन्न होता है। सीमित अवस्था निम्नतर मन और मुक्त अवस्था उच्चतर मन की सूचक है।

इन्द्रिय-विषयों से सम्बन्ध

एक बिन्दु पर आकर इन्द्रियाँ और उनके विषय परस्पर मिलते हैं। इस स्वाभाविक आकर्षण से मन की प्रकृति बदल जाती है। मन में एक इच्छा उत्पन्न होती है – 'मैं इस वस्तु को चाहता हूँ।' अगर उस वस्तु का तुम्हारे मन पर कोई प्रभाव न पड़ता, तो तुम्हारे मन की स्थिति नहीं बदलती। तुम कहते, 'मुझे इसकी जरूरत नहीं।' लेकिन जब वह वस्तु मन की प्रकृति को बदलती है, तब तुम उस वस्तु को चाहने लगते हो। उदाहरण के लिए, फूलदान में रखे एक सुन्दर फूल पर तुम्हारी दृष्टि जाती है और तुम्हारे मन में विचार आता है, 'क्यों न मैं इसे अपने साथ ले चलूँ?' यह साधारण-सा विचार दर्शाता है कि उस वस्तु ने किसी तरह तुम्हारे मन को प्रभावित कर दिया है। अगर वह फूल तुम्हें आकर्षक नहीं लगता तो वह वहीं पड़ा रहता और तुम उसकी ओर पलटकर भी नहीं देखते। लेकिन तुमने उसकी ओर देखा और एक सम्बन्ध, एक इच्छा उत्पन्न हो गई। इच्छा इन्द्रियों और इन्द्रिय-विषयों के सम्पर्क के कारण ही उत्पन्न होती है। श्रीकृष्ण भगवद्गीता में कहते हैं –

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥2.62॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥2.63॥

संगात् संजायते कामः अर्थात् इन्द्रिय विषयों से सम्बन्ध स्थापित होने पर मन में इच्छा उत्पन्न होती है। इच्छा क्रमशः आसक्ति बन जाती है। इच्छा के दो स्वरूप होते हैं। एक होती है साधारण-सी कामना, 'अगर यह वस्तु मेरे पास होती तो अच्छा होता', पर जब इच्छा तीव्र और गहरी होकर लालसा का रूप ले लेती है, तब आसक्ति उत्पन्न होती है। दिन-रात तुम उसी वस्तु के विषय में सोचते रहते हो जो तुम्हारे मन का एक अभिन्न हिस्सा बन गयी है। जब इष्ट वस्तु प्राप्त नहीं होती लेकिन फिर भी तुम उसे हर कीमत पर पाना चाहते हो, तब तुम अधीर और आक्रमक बन जाते हो – *कामात् क्रोधोऽभिजायते।* जब तुम क्रोध के आवेश में आ जाते हो तब मन सम्मोहित हो जाता है – *क्रोधात् भवति सम्मोहः।* कामना अधिकाधिक प्रबल होती जाती है और तुम मानसिक स्पष्टता खो देते हो। यह मन की सम्मोहित अवस्था है, जिसमें मन किसी एक विचार, घटना या वस्तु से

प्रभावित हो गया है, एक वासना से अभिभूत हो गया है। *सम्मोहात् स्मृति विभ्रम:* – जब मन इस प्रकार सम्मोहित हो जाता है, तब बुद्धिमानी और समझदारी नहीं रहती और यथार्थता से सम्पर्क टूट जाता है। तुम भ्रान्ति की दुनिया में जीने लगते हो। यही बुद्धिनाश है – *स्मृति भ्रंशात् बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।*

इन्द्रिय-विषयों से सम्पर्क ही इच्छा के रूप में प्रारम्भ होकर अन्तत: आसक्ति बन जाता है, जिसके कारण तुम्हारी मानसिकता पूरी तरह भ्रमित हो जाती है और तुम अपनी विवेक-शक्ति खो देते हो। तुम शारीरिक आकर्षण और वासना को ही प्रेम के रूप में देखने लगते हो जबकि वे ऐसे हैं नहीं। कामुकता को प्रेम समझ बैठते हो यद्यपि वह ऐसा है नहीं। अगर तुम किसी व्यक्ति से कहते हो कि तुम उससे प्रेम करते हो, तो उस व्यक्ति में किस चीज से प्रेम करते हो? उस व्यक्ति का स्वभाव या चरित्र तो तुम जानते नहीं, तब फिर उस व्यक्ति में किस चीज से प्रेम करते हो? तुम केवल उस व्यक्ति के शरीर और सौन्दर्य से प्रेम करते हो, वही तुम्हारी लालसा बन जाती है। शादी के बाद जब अन्य पक्ष उजागर होते हैं तब तलाक की नौबत आ जाती है। शादी के पहले ही अगर तुम्हें यह मालूम हो जाता तो शायद तुम उस व्यक्ति से शादी ही नहीं करते। लोग प्रेम की वास्तविक गहराई तक पहुँचे ही नहीं हैं, उसकी वास्तविक प्रकृति समझे ही नहीं हैं। उनका अनुभव केवल शारीरिक प्रेम और वासना तक सीमित रहा है, और उसे ही उन्होंने प्रेम का चरम स्तर मान लिया है।

प्रेम के सम्बन्ध में तुम्हारी अवधारणाएँ केवल मानसिक विचार हैं जो बाह्य विषयों के सन्दर्भ में तुम्हारे मन में उत्पन्न हुए हैं। तुम्हारा पति या पत्नी तुम्हारे लिए मात्र इन्द्रिय-विषय है, और कुछ नहीं। यही सारी समस्या की जड़ है। इस भौतिक जगत् में जीते हुए, अपने चारों ओर विद्यमान सभी चीजों को देखते हुए स्वाभाविक

रूप से उन्हें पाने और उपभोग करने की इच्छा उत्पन्न होगी। ऐसी इच्छा प्राय: स्पर्धा, ईर्ष्या और जलन जैसी भावनाओं से प्रेरित होती है। अगर तुम्हारा प्रतिद्वन्द्वी तुमसे बेहतर मोटर-कार ले आता है, तो ईर्ष्यावश तुम उससे भी अच्छे मॉडल पाना चाहोगे। उसे पाने की इच्छा तुम्हारी जरूरत बन जाएगी। जबकि देखा जाए तो वह तुम्हारी जरूरत है नहीं, वह इच्छा सिर्फ तुम्हारी ईर्ष्या के कारण उत्पन्न हुई है।

ईर्ष्या और जलन के कारण तुम लोग एक-दूसरे से तुलना करने लगते हो, 'उसके पास जो है, वह मेरे पास क्यों नहीं?' इन क्षुद्र भावनाओं के कारण तुम्हारी दृष्टि केवल बाहरी चीजों तक सीमित हो जाती है। कौन जाने, आन्तरिक रूप से तुम अपने प्रतिद्वन्द्वी से कहीं बेहतर निकलो! लेकिन तुम्हारा ध्यान उस ओर नहीं जाता। तुम उन वस्त्रों को देखते हो जो दूसरों ने पहने हैं और उनसे अच्छे वस्त्र पहनने की इच्छा से जुड़ जाते हो। तुम उस भोजन को देखते हो जो दूसरा व्यक्ति खा रहा है और उससे बढ़िया भोजन करने की इच्छा करने लगते हो। तुम केवल बाहर-ही-बाहर देखते हो, तुम यह नहीं देखते कि अन्दर से तुम कहीं अच्छे हो। ईर्ष्या, डाह और लोभ जैसी संकीर्ण भावनाएँ अनेक प्रकार की सूक्ष्म आसक्तियाँ उत्पन्न करती हैं, जिन्हें तुम प्राय: समझ नहीं पाते।

मन की गहराइयों में उतरना

महत् के सूक्ष्म व्यवहारों को समझने के लिए तुम्हें आत्म-विश्लेषण, चिन्तन और ध्यान का आश्रय लेना होगा। वैसा वाला ध्यान नहीं जो सामान्य रूप से जाना जाता है, बल्कि योग सूत्रों में महर्षि पतंजलि द्वारा निरूपित ध्यान का क्रम। उनके अनुसार यह क्रम प्रत्याहार के अभ्यास से प्रारम्भ होता है, ध्यान से नहीं। केवल आँखें बन्द कर लेना ध्यान नहीं है, बल्कि इसे अपने आन्तरिक सौंदर्य का साक्षात्कार कराने वाले साधन के रूप में समझना चाहिए। प्रत्याहार और धारणा के क्रमिक अभ्यासों द्वारा ही व्यक्ति धीरे-धीरे मन की गहराइयों में उतर सकता है और पता लगा सकता है कि कहाँ वह सकारात्मक रूप से जुड़ा है और कहाँ नकारात्मक रूप से। यदि कोई सम्बन्ध नकारात्मक है तो उसे बदलने का प्रयास करे और सकारात्मक है तो उसकी वृद्धि करे। यह समझ और ज्ञान तब मिलता है, जब तुम प्रत्याहार के अभ्यास से अपनी सभी मानसिक गतिविधियों को देख-समझ लेते हो, मन के अनजान आयामों का अवलोकन कर लेते हो और अपनी मानसिक प्रक्रियाओं को नियंत्रित और निर्देशित करने की क्षमता प्राप्त कर लेते हो।

अपने विचारों को एक मिनट के लिए रोककर देखो। साठ सेकेण्ड के लिए विचारशून्य हो जाओ। ऐसा सचमुच कर सकते हो क्या? नहीं। तब कैसे कह सकते हो कि तुम ध्यान के अनुभवी अभ्यासी हो। अगर तुमने प्रत्याहार को सिद्ध कर लिया है, तब तुम अपने विचारों को रोक सकते हो। साठ सेकेण्ड तो क्या,

साठ दिनों तक भी। एकाग्रता या धारणा ध्यान का दूसरा महत्त्वपूर्ण चरण है। यदि तुम्हें आधे घण्टे तक आँखें बन्द कर बैठने को कहा जाए तो दस मिनट बाद ही झपकियाँ लेने लगोगे। तुम सो जाओगे और बाद में कहोगे, 'वाह! आज कितना बढ़िया ध्यान लगा!' तुम्हारे लिए नींद ही ध्यान बन जाती है। लोगों को तो सत्संग में भी अपनी आँखें खुली रखने में दिक्कत होती है, और वे ध्यान में सजग और सतर्क रहना चाहते हैं! यह असम्भव है। जिनका अपने मन पर नियंत्रण नहीं, वे ध्यान का अभ्यास बिल्कुल नहीं कर सकते।

जिन्होंने प्रत्याहार और धारणा सिद्ध कर लिया है, उन्हें अगर छ: घण्टे ध्यान करने को कहा जाए तो वे एक सेकेण्ड के लिए भी झपकी नहीं लेंगे और उनकी सजगता प्रारम्भ से अन्त तक समान बनी रहेगी। उसमें कोई विक्षेप नहीं होगा। अगर ऐसा कर सकते हो तभी ध्यान के अभ्यासी कहलाने लायक हो। तभी ध्यान तुम्हारे लिए सार्थक होगा। लेकिन अगर केवल आँखें बन्द करके अपने आपको खोने के लिए ध्यान का अभ्यास करना चाहते हो तो वह निरर्थक और निष्प्रयोजन है। अधिकांश लोगों का अपने मन पर कोई नियंत्रण नहीं होता। जिसे वे ध्यान कहते हैं वह चित्तवृत्तियों के आवेग में डोलती मनोवस्थाओं के सिवा और कुछ नहीं होता।

प्रत्याहार और धारणा के क्रम में जब तुम यह भली-भाँति जान लेते हो कि अहंकार, चित्त, बुद्धि एवं मनस् की प्रकृति और अभिव्यक्ति को समझना और रूपान्तरित करना है, तब तुम मन की एक उच्चतर अवस्था में प्रवेश करने का प्रयास करते हो। यही अवस्था ध्यान है। तब जाकर ध्यान तुम्हारे लिए प्रासंगिक होता है। नहीं तो बेहतर होगा कि तुम प्रत्याहार और धारणा पर ही टिके रहो।

महर्षि पतंजलि यह तथ्य भली-भाँति जानते थे, इसीलिए उन्होंने प्रत्याहार और धारणा पर जोर दिया। प्रत्याहार का अभिप्राय है, इन्द्रियों को उनके विषयों से वापस लाना। मनोनियंत्रण के क्रम में महर्षि पतंजलि ने प्रत्याहार और धारणा को ध्यान से पहले रखा। उनकी दृष्टि में अगर केवल ध्यान महत्त्वपूर्ण होता तो वे प्रत्याहार और धारणा की उपेक्षा कर देते और अष्टांग योग के बदले षडंग योग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, ध्यान और समाधि) का ही प्रचलन होता। लेकिन उन्होंने मन को उसके विषयों से अलग करने के महत्त्व को समझा। वे जानते थे कि इससे मन अपनी नकारात्मक वृत्तियों और अभिव्यक्तियों से मुक्त हो सकेगा, जिसके बाद सकारात्मक गुणों का विकास सम्भव हो सकेगा। इसीलिए मन के प्रबन्धन में प्रत्याहार और धारणा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

तनाव-मुक्ति, साक्षी भाव और जीवन में सामंजस्य

मन की प्रतिभाओं को किस प्रकार विकसित किया जा सकता है? सबसे पहले अपने आपको तनावों से मुक्त करो। अगर तुम तनावग्रस्त हो तो तुम अपने भीतर

कोई प्रतिभा नहीं विकसित कर सकते। इसलिए तनाव-मुक्ति आवश्यक है। तनावों से मुक्त होने के बाद अपने व्यवहारों और प्रतिक्रियाओं का अवलोकन करने और उनमें संतुलन और सामंजस्य लाने की प्रक्रिया प्रारम्भ करो।

प्रत्याहार के प्रथम अभ्यास, 'योग निद्रा' द्वारा तनावों से छुटकारा मिलता है। उसके पश्चात् आता है अपने व्यवहारों और प्रतिक्रियाओं का अवलोकन एवं विश्लेषण। इसके लिए रात में सोने से पहले अपने पूरे दिन का अवलोकन करो। दिन भर जो कुछ तुमने किया है, जो कुछ हुआ है, उसे पाँच मिनट के लिए अपने मानस-पटल पर फिल्म की तरह चलने दो। 'मैं इतने बजे जगा, उसके बाद यह किया, वह किया, इस आदमी से बातें की, दिन बढ़िया रहा या बुरा रहा...' अगर दिन बुरा रहा तो स्वयं से पूछो, 'क्यों बुरा रहा? क्या मेरी मनोवृत्ति नकारात्मक थी? क्या दूसरा व्यक्ति आक्रामक था?' तुम्हें सभी चीजें देखनी हैं। सभी चीजें स्वीकार लेने के पश्चात् अपने से पूछो, 'अगर कल भी ऐसी ही परिस्थिति का सामना हो तो मैं अपनी प्रतिक्रिया को कैसे सुधार सकता हूँ?' इसे पता लगाने का प्रयास करो। यह मत कहो, 'मैं नहीं सोच सकता।' अगर तुम सोच नहीं सकते तो इसका मतलब है तुम्हारे पास बुद्धि नहीं। ईश्वर ने प्रत्येक व्यक्ति को बुद्धि प्रदान की है, लेकिन तुम समस्या से इतना तादात्म्य स्थापित कर लेते हो कि समाधान देख नहीं पाते। जीवन का स्वभाव ही कुछ ऐसा है। जीवन तुम्हें कहीं पर अटकाता नहीं, तुम स्वयं ही अपने को अटकाये रखते हो।

मुझे अपने जीवन में कोई समस्या नहीं रही, क्योंकि जब भी कोई समस्या आती तब उसका समाधान भी आ जाता था। मैंने अपने गुरु से कभी नहीं पूछा,

'मुझे अमुक समस्या है, इसका समाधान क्या है?' मैंने उनसे कभी नहीं पूछा, 'मुझे घुटने में दर्द है, इसके लिए क्या करूँ? मुझे अमुक अनुभव हो रहा है, यह अच्छा है या बुरा? आज मैंने ध्यान में परियों और फरिश्तों को देखा, डरावने चेहरों को देखा। मैं क्या करूँ?' ऐसी बातें मैंने अपने गुरु से कभी नहीं कीं, क्योंकि उन्होंने मुझे अलग प्रकार का प्रशिक्षण दिया है – 'अगर तुम्हारी कोई समस्या है तो स्वयं उसका समाधान खोजो।' मैं अपने जीवन में इसी सूत्र का प्रयोग करता हूँ। इसलिए जब लोग कोई समस्या लेकर मेरे पास आते हैं तब मैं उनसे प्राय: यही कहता हूँ, 'मुझे अपनी समस्या मत बताओ। यह बतलाओ कि उसका समाधान क्या है। अपनी बिगड़ी परिस्थिति का इलाज तो खुद ही करना पड़ेगा। मैं तो केवल परामर्श दे सकता हूँ। अगर तुम बहुत ज्यादा सोचते हो, तो ज्यादा मत सोचो। अगर उदास हो, तो कीर्तन करो, नाचो, कूदो, प्रसन्न रहो। अगर अहंकारवश किसी से अनबन हो गई है तो जाकर उससे हाथ मिला लो।' मैं तो केवल सलाह दे सकता हूँ। अपने जीवन में तालमेल तो तुम्हें खुद बिठाना है। अगर ऐसा कर पाते हो तो कठिन परिस्थिति से बाहर निकल आओगे, और अगर ऐसा नहीं कर सकते, तो छोटी समस्या भी बड़ी हो जायेगी, तिल से ताड़ बन जायेगा।

योग द्वारा जीवन का सम्पोषण

भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में अपनी प्रतिक्रियाओं को समझो और स्वीकार करो। स्वयं को तनावों से मुक्त रखो, दिनभर की घटनाओं और गतिविधियों का अवलोकन करो। मन की समस्याओं को सम्हालने की शुरूआत यहीं से होती है। अगर तुम ये दो चीजें कर सकते हो, तो मैं आश्वासन दे सकता हूँ कि तुम्हारी साठ प्रतिशत मानसिक समस्याएँ अपने आप सुलझ जाएँगी। लेकिन ये अभ्यास नियम और श्रद्धा के साथ करने होंगे।

जब तुम्हें बुखार या अन्य कोई रोग होता है तब डॉक्टर कुछ दिनों के लिए एन्टीबायोटिक दवाएँ देता है। दवा लेने के क्रम को तुम्हें निश्चित दिनों तक पूरा करना होता है। तुम बीच में ही दवा नहीं छोड़ सकते। यही सिद्धान्त योगाभ्यास पर भी लागू होता है। तुम सबेरे जग नहीं सके या थोड़ा आलस लग रहा है तो कह देते हो, 'आज मैं योगाभ्यास नहीं करूँगा।' इसका तात्पर्य यह कि तुम आज की एन्टीबायोटिक दवा नहीं ले रहे हो। वैसे देखा जाए तो योग एन्टीबायोटिक नहीं, 'प्रो-बायोटिक' है, जीवन का पोषक तत्त्व है। अगर तुम एन्टीबायोटिक दवा को निश्चित दिनों तक ले सकते हो, तो अपनी प्रो-बायोटिक दवा अर्थात् योग का भी उसी नियमितता से सेवन क्यों नहीं कर सकते? अपने मन और जीवन को सम्हालने और सुधारने की यात्रा यहीं से प्रारम्भ होती है।

– 10 अक्टूबर 2010, गंगा दर्शन

योग में मानस दर्शन

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

योग और तंत्र शास्त्र में मानस दर्शन की विस्तृत प्रक्रिया आती है। कल्पनात्मक और रचनात्मक मानस दर्शन, जिस पर तंत्र और योग बल देता है, यूँ ही मनमाने ढंग से नहीं चुना गया है, बल्कि यह आत्मिक जगत्, जो प्रतीकों का जगत् है, उससे गहनता से सम्बद्ध है और उस पर आधारित है। प्रतीकों का अन्वेषण करता हुआ मन ऐसे विचारों की ओर प्रेरित होता है जिन्हें तर्क के आधार पर नहीं समझा जा सकता है, लेकिन निस्संदेह उसका सम्बन्ध व्यक्ति के संरचनात्मक अतीत से होता है जिसकी परिभाषा नहीं की जा सकती है।

आज, पाश्चात्य विचारकों एवं दार्शनिकों के प्रभाव के कारण संसार तथ्यात्मक प्रमाणों पर या वस्तुनिष्ठ अनुभवों पर आधारित ज्ञान से अधिक जुड़ गया है। ऐसी बहुत-सी बातें हैं जो मानव की समझ से परे हैं और उन्हें प्रयोगशाला में प्रमाणित भी नहीं किया जा सकता है, लेकिन मन की गहराइयों में व्यक्तिगत अनुभूति के माध्यम से समझा जा सकता है। उन आन्तरिक अनुभूतियों पर ध्यान देना आवश्यक है।

उन आन्तरिक अनुभूतियों और दृश्यों का विकास करने के लिए रचनात्मक कल्पनाशीलता और मानस दर्शन की क्षमता को अपने अन्दर उत्पन्न करना अनिवार्य है। कल्पनाशीलता एक गत्यात्मक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से विचार करने वाला व्यक्ति अपने अनुभवों के उस आयाम का निर्माण करता है जिसे तार्किक विचार प्रक्रिया के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता है। आपकी कल्पना जितनी व्यापक होगी, अनुभूति का क्षेत्र उतना ही विस्तृत होगा।

हम किसी-न-किसी रूप में कल्पना करने में सक्षम होते हैं, लेकिन साधना के एक स्तर पर वह अपर्याप्त होता है। वे कल्पनाएँ सीमित होती हैं और सम्भावनाओं की सीमाओं को पार नहीं कर पाती हैं। वे सामान्य, सामाजिक नैतिक आचारों और विचार प्रक्रिया की सीमा में ही अवरुद्ध रह जाती हैं। इसके अतिरिक्त वे विचार के परे नहीं जा पाती हैं, वे दृश्य कभी नहीं बन पाती हैं। यदि वे बन पातीं तो हम सब दूरदर्शी और द्रष्टा बन गये होते। द्रष्टा वह है जो अपने अन्तर में देख सकता है, उसने अपनी कल्पनाशीलता को इतना विकसित कर लिया है कि सभी ज्ञान उसे दृश्य के रूप में प्राप्त होते हैं। वह अपनी उन्हीं क्षमताओं का उपयोग करता है जो हम सब के पास हैं, लेकिन उपयोग करने का उसका तरीका अधिक गत्यात्मक और व्यापक होता है।

कल्पना – सृजनात्मक शक्ति का स्रोत

यह पाया गया है कि जिनमें प्रबल कल्पनाशीलता होती है, उनमें सृजन की क्षमता होती है, क्योंकि कल्पनाशीलता एक ऐसी मानसिक शक्ति है जिसका किसी भी रूप में प्रयोग किया जा सकता है। जब आप दृश्यों और प्रतीकों के आन्तरिक जगत् की रचना करते हैं तब मन की शक्ति को बल मिलता है। आप अपनी मानसिक शक्ति के द्वारा अपने अन्दर प्रसुप्त क्षमताओं से उन छवियों का निर्माण कर रहे हैं। एक बार जब मन की शक्तियाँ कल्पनाशीलता के रूप में विकसित हो जाती हैं और उस विचारशृंखला का निर्माण करती हैं जिसे आप आगे ले जाना चाहते हैं तब यह सहज ही अपने लक्ष्यों को पूरा करने की क्षमता का विकास कर लेती हैं।

पिछले कुछ वर्षों में कैंसर के रोगियों का इलाज करने के लिए मानसिक दर्शन की प्रक्रिया का अत्यन्त सफलतापूर्वक प्रयोग हुआ है। ऑस्ट्रेलिया के प्रख्यात चिकित्सक डॉ. एन्स्लाइ मायर्स और अमेरिका के डॉ साइमॉन्टन, दोनों ने उपचार की प्रक्रिया में रोगी के द्वारा मानस दर्शन पर प्रयोग किये हैं। रोगी को मानस दर्शन की ऐसी शृंखलाओं के लिए प्रेरित किया गया जिसमें स्वस्थ कोशिकाएँ अस्वस्थ कोशिकाओं पर उसी प्रकार आक्रमण करती हैं जिस प्रकार एक सेना दूसरी सेना पर आक्रमण करती है। इसमें सफलता रोगी की एकाग्रता और अपने अन्दर इस प्रक्रिया का मानस दर्शन करने की क्षमता पर निर्भर करती है। इस प्रकार के प्रयोगों के परिणाम निश्चित रूप से सुखद रहे हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि कैंसर के रोगियों के इलाज में इस पक्ष पर बल दिये जाने की प्रेरणा तंत्र और योग से ली गई है। तंत्र में मानस दर्शन और रचनात्मक कल्पना वस्तुनिष्ठ एवं विषयनिष्ठ आयामों के बीच एक सेतु का कार्य करती है। आपकी कल्पना आपके वस्तुनिष्ठ अनुभवों पर केन्द्रित हो सकती है, किन्तु आप जिन छवियों की रचना करते हैं वे पूर्णत: विषयनिष्ठ होती हैं।

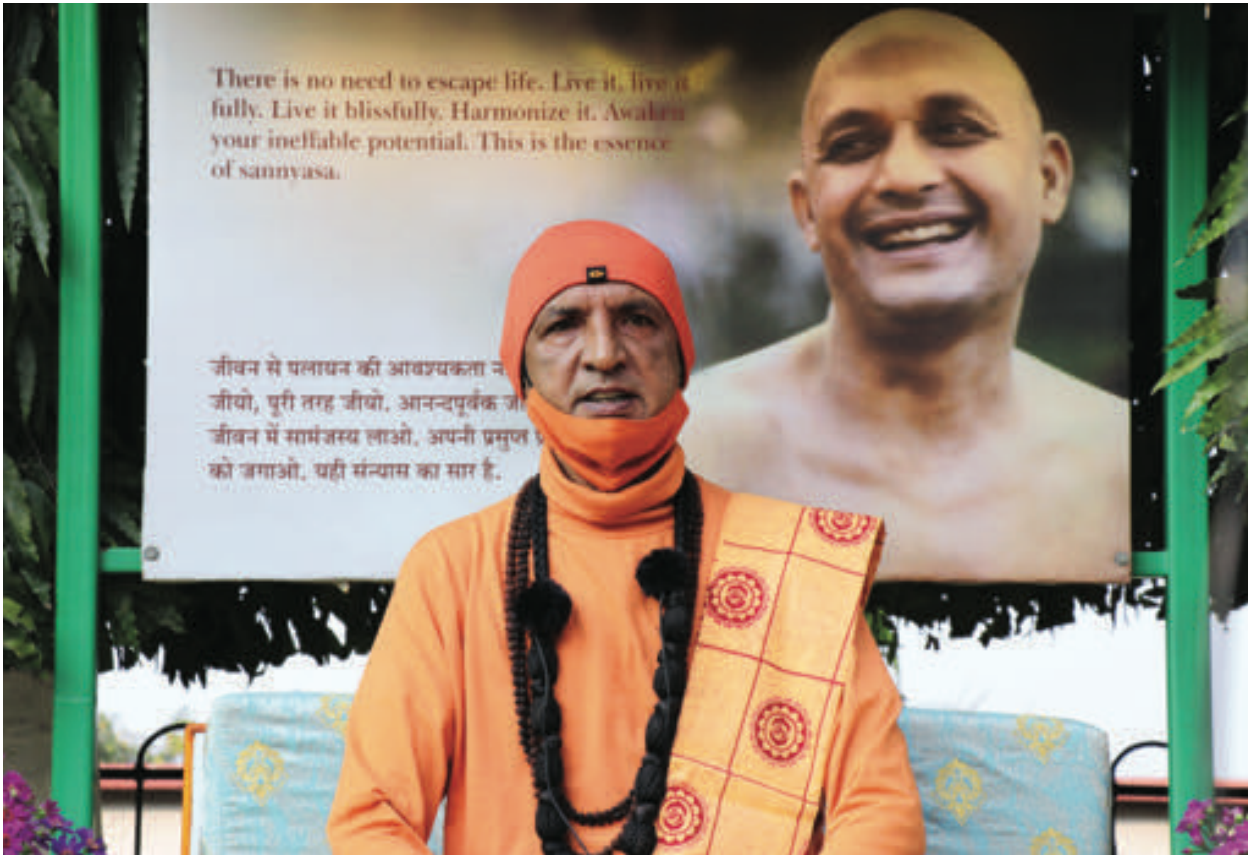
There is no need to escape life. Live it, live it
fully. Live it blissfully. Harmonize it. Awaken
your ineffable potential. This is the essence
of sannyasa.

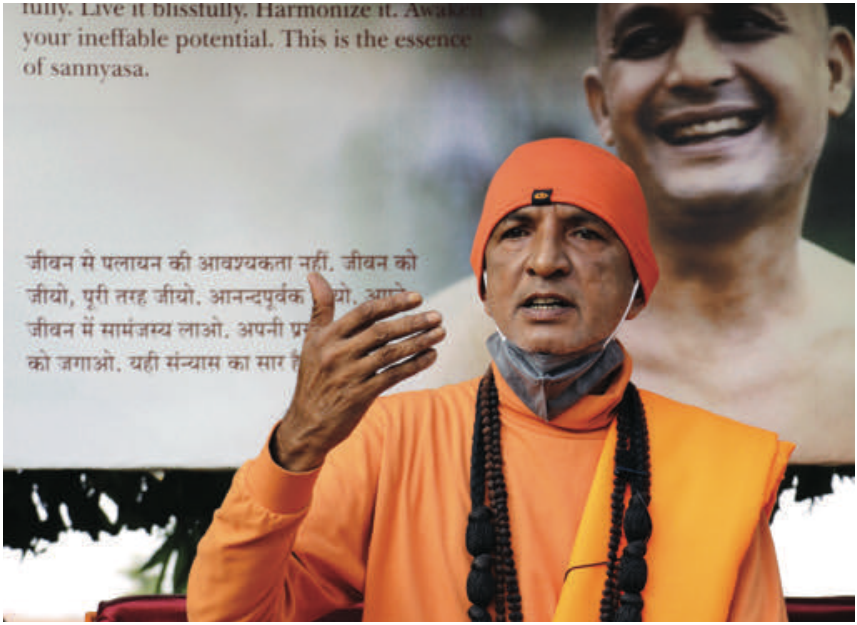
fully. Live it blissfully. Harmonize it. Awaken
your ineffable potential. This is the essence
of sannyasa.
जीवन में पलायन की आवश्यकता नहीं. जीवन को
जीयो, पूरी तरह जीयो. आनन्दपूर्वक
जीवन में सामंजस्य लाओ. अपनी
को जगाओ. यही संन्यास का सार

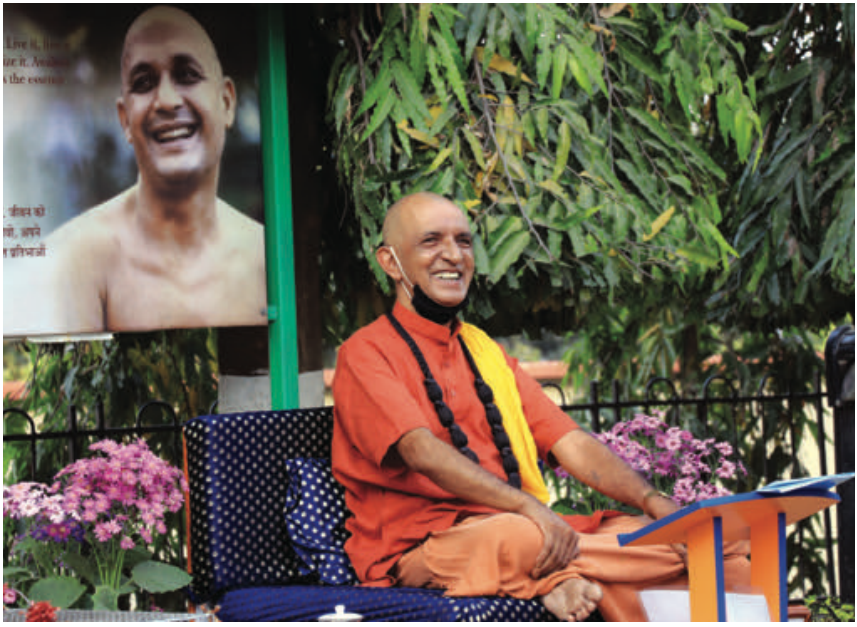

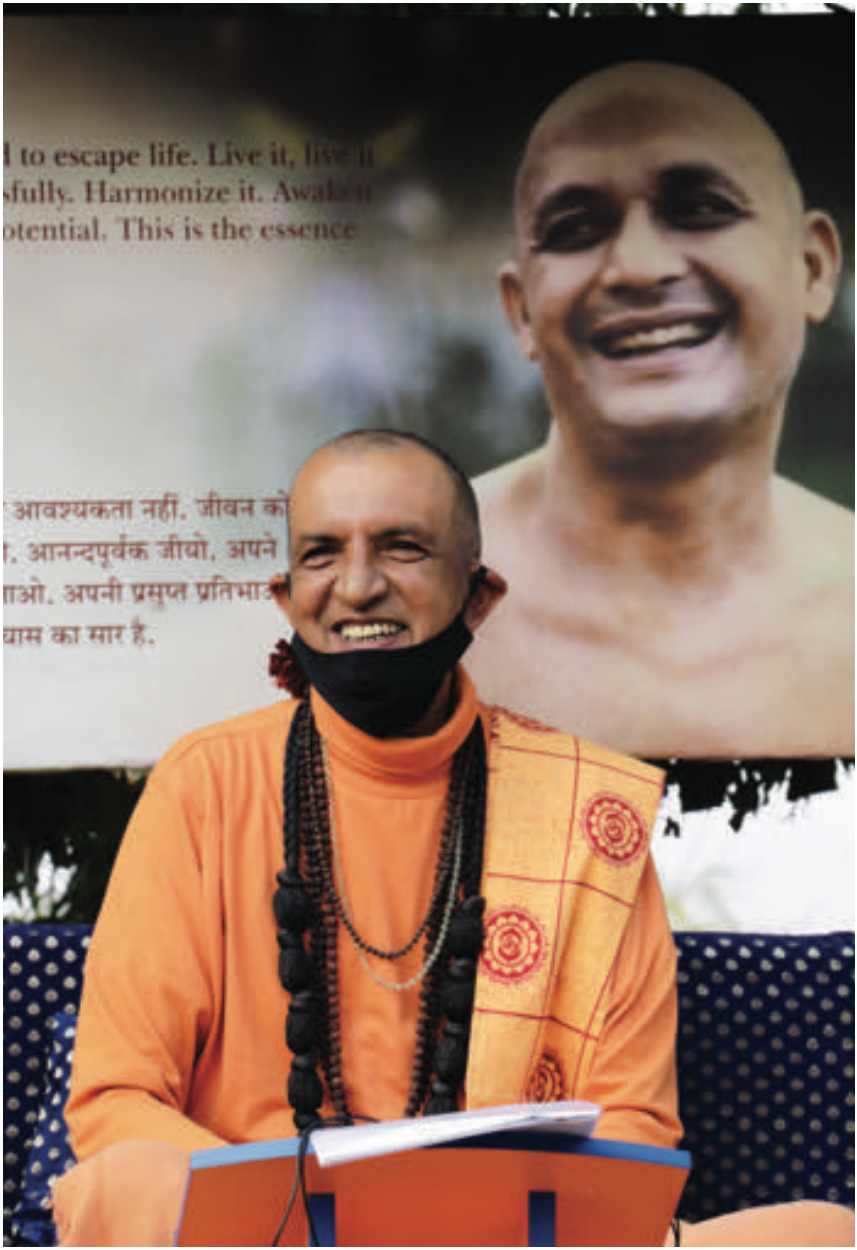
to escape life. Live it, live it
sfully. Harmonize it. Awaken
otential. This is the essence
आवश्यकता नहीं. जीवन को
ो. आनन्दपूर्वक जीयो, अपने
ाओ. अपनी प्रसुप्त प्रतिभा
ास का सार है.

यही कारण है कि तंत्र ने प्रतीकशास्त्र की व्यापक कला का विकास किया है। प्रतीक उस आधार के रूप में कार्य करता है जहाँ से साधक की कल्पना को एक दिशा, एकाग्रता और ध्यान केन्द्रित करने का माध्यम मिलता है। अमूर्त कल्पना निस्संदेह अधिक शक्तिशाली होती है, लेकिन कम ही लोग रचनात्मक ढंग से लाभदायक परिणाम प्राप्त कर पाते हैं। अधिकतर लोगों को हर चरण पर मार्गदर्शन और निर्देशों की आवश्यकता होती है क्योंकि मन अप्रशिक्षित रहता है। बहुत आसानी से इसमें विक्षेप और विचलन होता है या यह अनियन्त्रित हो जाता है। इसीलिए योगानुशासन आवश्यक होता है ताकि मन स्वत: साधक के नियन्त्रण में रहे, भले ही वह किसी भी ऊँचाई पर पहुँच गया हो।

अपनी कल्पना का उपयोग एक रचनात्मक शक्ति के रूप में करने के लिए एक विचार को उत्पन्न करना, उस पर मानस दर्शन करना और उस पर ध्यान को तब तक एकाग्र रखना आवश्यक है जब तक आप इसे इसकी पराकाष्ठा पर नहीं ले जाते हैं। केवल तभी मन शक्तिशाली हो सकता है। हालाँकि मन इस प्रक्रिया में कठिनाइयाँ उत्पन्न करता है और इसीलिए औसत व्यक्ति निराश और कुण्ठित हो जाता है।

मानस दर्शन करते समय प्रारम्भ में छवियाँ केवल विचार के रूप में होती हैं, लेकिन धीरे-धीरे उनका विकास स्पष्ट चित्रों के रूप में हो जाता है। यह तभी हो पाता है जब मन अधिक केन्द्रित होता है। जब मन इन चित्रों पर, जिन्हें स्वयं आपने बनाया है, स्थिर रहता है, तब आप उन सूक्ष्म अनुभवों की ओर प्रेरित होते हैं जिन पर सामान्यत: आपका ध्यान नहीं जाता।

मोह का निराकरण

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

मोह आध्यात्मिक साधकों के लिए सबसे बड़ी बाधाओं में से एक है। अपने शरीर, पत्नी, बच्चे, माता, पिता, भाइयों, बहनों तथा सम्पत्ति के प्रति आसक्ति मोह है। मन का यह स्वभाव है कि वह किसी-न-किसी पदार्थ की ओर आसक्त होता रहता है। यदि मन को एक पदार्थ की आसक्ति से दूर भी रखें तो वह दूसरे पदार्थ से चिपक जाता है। कोई भी व्यक्ति मोह से सर्वथा मुक्त नहीं है। आसक्ति, कामना, राग तथा अभिरुचि – ये विविध रीतियाँ हैं जिनसे परम शक्तिशाली मोह जीव को संसारचक्र में बाँधता है। एक व्यक्ति को चावल से आसक्ति है। मधुमेह रोग के कारण भले ही वह चावल खाना त्याग देता है, लेकिन फिर भी भोजन में चावल तथा रोटी दोनों ही परोसे जाएँ, तो वह चावल को ही अधिक पंसद करेगा। मोह माया का सबसे बड़ा अस्त्र है। माया रहस्यमयी है। मोह भी रहस्यमय है। मोह एक प्रकार का प्रभावशाली नशा है, जो व्यक्ति को पल भर में मदहोश कर देता है।

यदि मोह न होता तो आपको इस संसार में कभी भी आना न पड़ता। स्थूल शरीर आसक्ति का प्रथम केन्द्र है। इसके पश्चात् ही अन्य आसक्तियों की बारी आती है। माता, पिता, भाई, बहन, पत्नी, पुत्र आदि सम्बन्ध आसक्ति हैं। आसक्ति किसी स्थान, व्यक्ति या पदार्थ के प्रति भी हो सकती है। आसक्ति के साथ-साथ ममता का विचार भी रहता है। आसक्ति एक प्रकार के दृढ़ गोंद की तरह है, जो मन को विषय पदार्थों से बाँध देती है। किसी व्यक्ति या पदार्थ के प्रति आसक्ति क्यों होती है? इसलिए कि वह उस वस्तु या व्यक्ति में अपने सुख को देखता है। जहाँ सुख की भावना है, वहाँ आसक्ति भी है।

आसक्ति सभी मानव-व्याधियों की जड़ है। अविद्या के कारण ही आसक्ति होती है अथवा यह अविद्या का ही दूसरा रूप है। पति पत्नी की मृत्यु पर रोता है, क्योंकि उसे पत्नी के भौतिक शरीर से अनुराग है। पत्नी पति की मृत्यु पर इसलिए नहीं रोती कि उसको पति से प्रेम है, बल्कि इसलिए रोती है कि पति के जीवित रहने पर उससे जो रति-आनन्द और अन्य सुख प्राप्त होते थे, वे अब प्राप्त नहीं हो सकेंगे। मोह, भ्रान्ति तथा भय सदा आसक्ति के साथ-साथ रहते हैं। भय का कारण इस भौतिक शरीर तथा सम्पत्ति से आसक्ति है। आसक्ति और भय को अलग नहीं किया जा सकता। अग्नि और उससे उत्पन्न उष्णता के समान दोनों का अनन्य सम्बन्ध है।

परमहंस संन्यासी सदा विचरते रहते हैं। उन्हें एक स्थान पर तीन दिन से अधिक नहीं ठहरना चाहिए। इस नियम का मुख्य उद्देश्य है आसक्ति का नाश। एक ही स्थान पर कुछ दिन ठहरने से राग-द्वेष उत्पन्न होने की संभावना रहती है। 'मैं शरीर

हूँ' इस विचार के त्याग में ही सच्चा त्याग है। 'सर्वसंग परित्याग' – सभी प्रकार की आसक्तियों का त्याग ही आत्मानन्द की प्राप्ति की कुंजी है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि व्यक्ति जंगल की राह पकड़ ले। राजा शिखिध्वज भले ही जंगलों में रहते थे, परन्तु उनकी आसक्ति अपने शरीर तथा कमण्डलु में बनी हुई थी, जबकि उनकी रानी चुडाला राज्य पर शासन करते हुए भी सभी प्रकार की आसक्तियों से मुक्त थी।

कितने ही लोग ऐसे हैं, जो अपनी आसक्ति की वस्तु के खो जाने पर व्यग्र हो उठते हैं, उन्हें बड़ा आघात पहुँचता है। आसक्ति की शक्ति ऐसी तबाही लाती है। यदि पिता को खबर मिलती है कि उसका एकलौता पुत्र मर गया है तो उसे धक्का लगता है और वह मूर्च्छित हो जाता है। ऐसा समाचार सुनने पर कुछ लोगों की तो तत्काल मृत्यु हो जाती है।

लोक-व्यवहारों तथा वस्तुओं का त्याग कर देने पर भी संन्यासी धीरे-धीरे अपने आश्रम तथा शिष्यों के प्रति आसक्त हो जाता है। इसका उन्मूलन करना और भी अधिक कठिन है। संन्यासी की आसक्ति सांसारिक लोगों की आसक्ति से कहीं अधिक प्रबल होती है। अनेक संन्यासी अपने दण्ड और कमण्डलु के प्रति इतने आसक्त रहते हैं कि पूछिए मत, मरते दम तक इन छोटी-छोटी वस्तुओं में उनकी आसक्ति रहती है। मन की संरचना ऐसी ही है कि वह पुरानी बातों और अनुभवों में विचरण करता है। सभी प्रकार की आसक्तियों से मुक्त होने के लिए सशक्त तथा

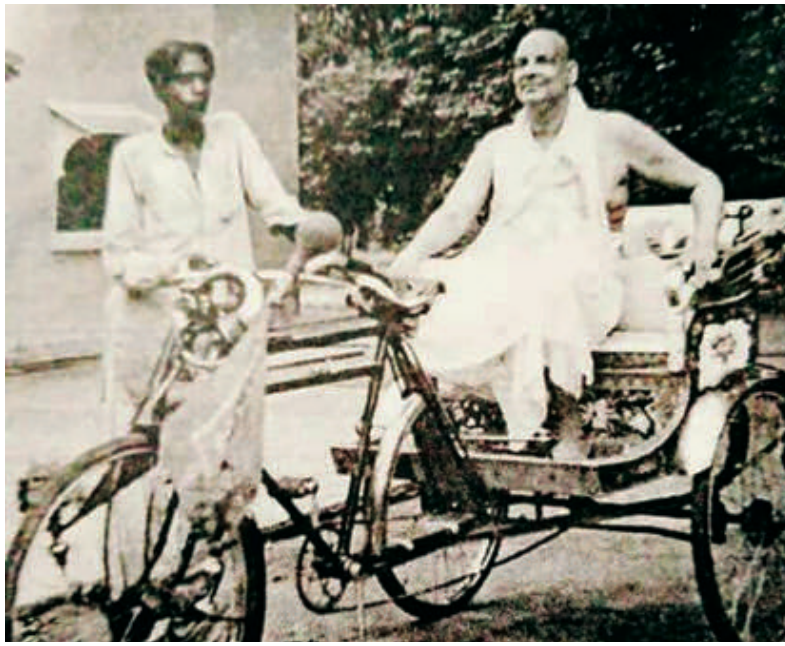

कठोर अनुशासन और साधना की आवश्यकता पड़ती है। मोह को नष्ट करने के लिए व्यक्ति को कठोर संघर्ष करना पड़ता है।

मोह के कारण ही मनुष्य को बारम्बार मृत्युलोक में आना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति के चित्त में आसक्ति का बीज छिपा हुआ है। मन किसी-न-किसी पदार्थ से आबद्ध रहने का यथासंभव प्रयास करता है। जब तक वह किसी पदार्थ के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित नहीं करता, तब तक उसे सुख का अनुभव नहीं होता है। यदि मन एक पदार्थ को छोड़ता है, तो तुरन्त ही दूसरे से चिपक जाता है। यह इसका स्वभाव है। मन के इस स्वभाव का कारण रजोगुणी वृत्ति है। यदि रजोगुण को दूर कर दिया जाए, तो समस्त आसक्तियों का लोप स्वयं ही हो जाता है। मोह के सूक्ष्म कार्यों का अन्वेषण करने के लिए साधक को सदा सावधान रहना चाहिए।

इसलिए आपको अपने मन को प्रतिदिन सभी व्यवहारों और कार्यों में प्रशिक्षित करना चाहिए। अपनी पत्नी, अपने पुत्र तथा सम्पत्ति के प्रति आसक्त न हों। यह जगत् सराय के समान है, जहाँ लोग कुछ समय के लिए एक-दूसरे से मिलते हैं और थोड़े समय में ही अलग हो जाते हैं। अपना मन परमात्मा में लगा दें और प्रतिदिन जप तथा ध्यान करें। वेदान्त के ग्रन्थ तथा भर्तृहरि के वैराग्य-शतक का स्वाध्याय करें। चित्त में मोह के बीज छिपे हैं। आपको विचार तथा आत्मज्ञान द्वारा इन सब बीजों को नष्ट अथवा भस्म करना होगा, वैराग्य-खड्ग से इन सब भ्रामक आसक्तियों का नाश करना होगा। गीता कहती है, *असंगशस्त्रेण दृढेन छित्वा* – इस माया-रूपी वृक्ष को तीव्र वैराग्य-रूपी शस्त्र द्वारा काट डालें। इस संसार के भ्रामक स्वरूप को जानकर मानसिक वैराग्य विकसित करें। इस संसार के कष्टों को, जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि तथा दु:खों का स्मरण करें। मन के सामने आत्मा के भव्य जीवन तथा आध्यात्मिक जीवन में निहित आनन्द को रखें। सन्तों, ऋषियों तथा योगियों के चरित्रों का अध्ययन करें तथा उनसे प्रेरणा प्राप्त करें।

सत् तथा असत् में विवेक करना सीखें। किसी भी व्यक्ति से अत्यधिक सम्बन्ध न रखें। इस संसार में अनासक्त जीवन यापन करें। जिस व्यक्ति को इस संसार से आसक्ति नहीं होती, वह परम सुखी व्यक्ति है, साक्षात् भगवान है। क्षुद्र वस्तुओं की हानि पर जरा भी शोक न करें। सदा यह चिन्तन करें कि विनाशशील पदार्थ बिना काम के हैं। इन सूत्रों को अनेक बार दुहराएँ, 'सभी पदार्थ विष्ठा के समान हैं। सभी पदार्थ विष के समान हैं।' यदि आप सभी परिस्थितियों में इस सूत्र को मन में दुहरा सकें तो आप मोह को नष्ट कर सकेंगे।

मोह बड़ी बाधा है। योगाभ्यास में आने वाली अन्य सभी बाधाएँ इस मोह से ही उत्पन्न होती हैं। यदि आप धीरे-धीरे इसे नष्ट कर सकें तो सम्पूर्ण आध्यात्मिक साधना तथा आत्म-साक्षात्कार का लक्ष्य सहज हो जाता है। हम तो यहाँ तक कह सकते हैं कि सम्पूर्ण आध्यात्मिक साधना का उद्देश्य ही इस भयंकर शत्रु को नष्ट करना है।

ध्यान की अनुभूति

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

ध्यान में निश्चिन्तता की अनुभूति होती है। अपना व्यक्तिगत स्वार्थ हट जाता है और सभी के लिए समान भाव आ जाता है। विरोधी विचारों और धारणाओं से जीवन खण्डित नहीं होता। एक पूर्णता में प्रत्येक वस्तु विलीन होती दिखती है। बाह्य संसार की घटनायें मस्तिष्क में प्रवेश करती हैं, मस्तिष्क उन्हें ग्रहण भी करता है, किन्तु उनसे किसी प्रकार की बाधा या तनाव या आवेग उत्पन्न नहीं होता तथा सभी कार्य निर्बाध सम्पन्न होते जाते हैं। जीवन की सबसे बड़ी बाधा, भय का अन्त हो जाता है। यहाँ तक कि मृत्यु-भय भी तुच्छ, सत्ताहीन और महत्त्वहीन मालूम होता है। जीवन के उतार-चढ़ाव, आशा-निराशा, सभी आनन्द की एक सतत् प्रवाहित उच्च अनुभूति में बदल जाते हैं। विरोधी दृष्टिगोचर होने वाली धार्मिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक मान्यताओं में सामंजस्य दिखायी देने लगता है। सब कुछ दिव्य परम सत्ता की लीला के रूप में दिखायी देने लगता है। भूत और भविष्य का महत्त्व नहीं रह जाता। अनन्त वर्तमान महत्त्वपूर्ण बन जाता है और पूर्णत: वर्तमान में रहना ही मुख्य उद्देश्य बन जाता है।

वर्तमान इतना महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि मन पूर्णतया अपने कार्य में केन्द्रित हो जाता है। अपने कार्यों में दक्षता और पूर्णता स्वाभाविक बन जाती है। दक्षता के बाधक तत्त्व, चिन्ता और क्रोध मस्तिष्क की तल्लीनता को खण्डित नहीं कर पाते। इस स्थिति में कार्य और क्रीड़ा के बीच कोई अन्तर नहीं रह जाता। जीवन इतना आनन्दपूर्ण बन जाता है कि किसी महत्त्वाकांक्षा, किसी औचित्य या तर्क की आवश्यकता नहीं रह जाती। अपना अस्तित्व ही पर्याप्त होता है। यह याद रखना चाहिये कि नैराश्य, असंतोष और दु:ख के कारण ही हम जीवन का कारण ढूँढ़ने लगते हैं अथवा जीवन की उन गतिविधियों का अनुसरण करने लगते हैं जो हमारी सत्ता के विपरीत हैं।

ध्यान से न तो उत्साह भंग होता है, न संसार के प्रति कर्म करने की रुचि में कमी आती है। हाँ, चिन्ता समाप्त हो जाती है। ऊपरी तौर पर चिन्ता भले ही दिखे, पर अन्तर्मन में पूर्णत: शान्ति रहती है। ध्यान से प्राप्त होने वाले अनुभवों के लिए की जाने वाली प्राथमिक तैयारियाँ भी अब महत्त्वपूर्ण नहीं रह जातीं, न ही उनकी आवश्यकता महसूस होती है। ध्यान के अनुभव इन नियमों से ऊपर हैं। ये नियम मानसिक अशान्ति को दूर करने के लिए बने हैं। अब व्यक्ति उत्तेजक, क्रोधपूर्ण, आनन्दपूर्ण – सब तरह के कार्य कर सकता है। उसके अन्त:प्रदेश पर अब इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह साक्षी भाव से जीवन में क्रियाशील रहता है। इन्द्रिय-जनित आनन्द कम नहीं होते, अपितु बढ़ जाते हैं।

सूक्ष्म-अन्तर्ज्ञान ही ज्ञान का माध्यम बनता है। वस्तुओं का गूढ़ एवं सार अर्थ दिखायी पड़ने लगता है। संसार की प्रत्येक वस्तु के प्रति अपनत्व एवं मित्रता का भाव उत्पन्न हो जाता है, तथा सम्पूर्ण सृष्टि अपनी सहायक प्रतीत होती है। विरोधी स्थितियाँ समाप्त हो जाती हैं। प्रत्येक अणु जीवन्त होकर चमकने लगता है। देश और काल के नियत अर्थ समाप्त हो जाते हैं। ये चीजें ईश्वरीय-सत्ता की अभिव्यक्ति मात्र बन कर रह जाती हैं। समय रुकता-सा दिखता है और अंतरिक्ष विस्तारहीन हो जाता है। तारे हमारी पहुँच की वस्तु प्रतीत होते हैं। अनन्तता और नित्यता स्पष्ट हो जाते हैं। प्रत्येक वस्तु के अस्तित्व में सृष्टि का शाश्वत रूप दिखता है। व्यक्ति अपने आपको हर चीज से अन्तरंग रूप से जुड़ा हुआ पाता है। उसे अपने अहं की स्थिति दिखती ही नहीं अथवा नगण्य-सी दिखती है। सम्पूर्ण सृष्टि में उसे अपना अस्तित्व एक बिन्दु-सा दिखता है।

जीवन में लोगों को कभी-कभी ऐसा लगने लगता है कि वे सृष्टि के अन्य भागों से विलग हो गये हैं। लगता है कि इस एकाकी और मरणशील जीवन से छुटकारा नहीं होगा। अधिकतर लोग इसे नियति समझकर हार मान लेते हैं, लेकिन ध्यान से इस स्थिति में परिवर्तन आ जाता है। ध्यान द्वारा मनुष्य यह समझने लगता है कि मनुष्य सृष्टि का एक आवश्यक, आत्मीय और महत्त्वपूर्ण अंश है। सृष्टि की

प्रत्येक वस्तु के साथ उसका सम्बन्ध है। इसकी सत्ता अलग नहीं है। तुम वही हो, यह ध्यान की रहस्यपूर्ण स्थिति है।

ध्यान की गहराई के अनुरूप अनुभवों के विवरण में भिन्नता होती है। साथ ही, इस अकथनीय अनुभव को अभिव्यक्त करने की कोशिश में प्रत्येक व्यक्ति अपनी भाषा, अपने धार्मिक शब्द तथा प्रतीकों एवं स्वानुभूति का उपयोग करता है। ध्यान की उच्चतम स्थिति का अनुभव अचानक नहीं होता है। ये आध्यात्मिक अनुभव क्रमिक रूप से तीव्र होते हैं। प्रारंभ में छोटी-छोटी बातों में इसका अनुभव होता है, यह अनेक मूर्त्त-अमूर्त्त रूपों में दृष्टिगोचर होता है। इनमें से अधिकांश रूप तो दैनिक जीवन के साथ असम्बद्ध होने की वजह से बड़े विचित्र लगते हैं। हमें आश्चर्य होने लगता है कि किस प्रकार ऐसी चीजें हमारे अन्दर से घटित हो रही हैं। अनुभूतियों और संवेगों की तीव्रता भी ध्यान में संभव हो जाती है। व्यक्तित्व की गहराई से उठने वाले नाद भी सुने जा सकते हैं।

आध्यात्मिक प्रगति और आध्यात्मिक अनुभव भाषा के परे हैं। आज तक जितने भी धर्म ग्रन्थ या शास्त्र लिखे गये, वे सब प्रतीकात्मक हैं। ये सब बातें उन्हीं की समझ में आयेंगी, जिन्हें इस तरह के अनुभव होने शुरू हो गये हों, अन्य सभी के लिए ये मात्र साहित्यिक कथाएँ ही होंगी।

गीता में कर्मयोग और ज्ञानयोग

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

श्रीमद् भगवद्गीता के दूसरे अध्याय में योग दर्शन और साधना का निरूपण करते हुए श्रीकृष्ण शोक, विषाद, मोह, ममता आदि के चार मुख्य कारण बताते हैं। पहला कारण है आसक्ति या राग। दूसरा कारण है भय या असुरक्षा की भावना। तीसरा कारण है क्रोध और चौथा है इच्छाओं और वासनाओं का उत्पन्न होना। अपने मन को संभालने के लिए श्रीकृष्ण अर्जुन को जो भी तरीके बतलाते हैं, इन चार बिन्दुओं को सामने रखकर ही बतलाते हैं। कर्म को कर्त्तव्य के रूप में करो और अपने मन को संभालते हुए चलो। मन को संभालने के लिए राग, भय, क्रोध और वासना, इन चार अवस्थाओं को नियंत्रित करने का प्रयास करो। इन चारों को अपने नियंत्रण में लाने के तरीके को श्रीकृष्ण ने कछुए की उपमा दी है। वे समझाते हैं कि जैसे कछुआ अपने अंगो को कवच के भीतर समेट लेता है, वैसे ही तुम भी अपनी इन्द्रियों को विषयों से हटा कर अपने भीतर केन्द्रित कर दो। इस प्रकार से श्रीकृष्ण अर्जुन को प्रत्याहार की शिक्षा देते हैं।

कर्मयोग की व्याख्या

यह सब सुनने के बाद अर्जुन एक प्रश्न करता है कि भगवन्! यदि आप कर्म की अपेक्षा ज्ञान को श्रेष्ठ मानते हैं, तो फिर मुझे भयंकर कर्म करने को क्यों कह रहे हैं? एक तरफ आप कहते हो कि ज्ञान उत्तम है, ध्यान के द्वारा ज्ञान प्राप्त करो। दूसरी तरफ मुझसे यह घोर कर्म, युद्ध करने के लिए कहते हो। जब ज्ञान और ध्यान का मार्ग उत्तम है, तब आप मुझे कर्म करने के लिए क्यों कहते हैं?

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव॥3.1॥

अर्जुन के इस प्रश्न के उत्तर में श्रीकृष्ण एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण तथ्य उजागर करते हैं। वे कहते हैं –

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥3.5॥

श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि कोई भी मनुष्य क्षणमात्र के लिए भी बिना कर्म के नहीं रहता, क्योंकि समस्त मनुष्य जाति, सारी सृष्टि प्रकृतिजनित गुणों के वशीभूत होकर कर्म करने के लिए बाध्य हो जाती है। कर्म केवल जीवन का धर्म ही नहीं,

अपितु सम्पूर्ण सृष्टि की आधारशिला है। जो भी इस सृष्टि में आता है, वह कर्म से अलग नहीं होता, बल्कि कर्म उसके जीवन का अंग होता है।

कर्म दो प्रकार के होते हैं, चेतन और अचेतन। चेतन कर्म में तुम्हें मालूम रहता है कि मैं काम कर रहा हूँ या नहीं, करना चाहता हूँ या नहीं। चेतन कर्म को तुम अपनी इच्छा द्वारा निर्देशित कर सकते हो। लेकिन अचेतन कर्म हर समय शरीर, मन, बुद्धि और भावना में चलता रहता है। वही तुम्हें तुम्हारे जीवन की जानकारी देता है। इसलिए श्रीकृष्ण कहते हैं कि कर्म के बिना कोई भी व्यक्ति नहीं रह सकता।

जब कर्म के बिना कोई व्यक्ति नहीं रह सकता तो सबसे अच्छा उपाय यही है कि कर्म करते रहो। यह संसार कर्म का क्षेत्र है, फिर यहाँ तुम कर्म का त्याग कैसे कर पाओगे? जहाँ पर कर्म द्वारा ही सब कुछ प्राप्त होता है, वहाँ पर तुम बिना कर्म के कैसे रह सकते हो? कर्म तो करना ही पड़ेगा, लेकिन एक उपाय जरूर कर सकते हो –

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियै: कर्मयोगमसक्त: स विशिष्यते॥3.7॥

जो मनुष्य अपने मन द्वारा इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त होकर कर्मेन्द्रियों द्वारा कर्मयोग का आचरण करता है, वही श्रेष्ठ है। यहाँ पर पहली बार कृष्ण जी ने 'कर्मयोग' शब्द का प्रयोग किया है, अभी तक वे कर्म शब्द का प्रयोग कर रहे थे। उनके कहने का तात्पर्य है कि अपनी इन्द्रियों को वश में करो और अनासक्त होकर कर्म करो। जो इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त होकर कर्म करता है, उस व्यक्ति को कर्मयोगी कहते हैं, और उस अवस्था को कर्मयोग।

कृष्ण जी ने यहाँ पर कर्मयोग की सुन्दर और उत्तम व्याख्या दी है। वे मात्र यह नहीं कह रहे कि तुम काम करो और फल की आशा मत करो। वह तो एक दर्शन, एक सिद्धान्त हुआ। जब इन्द्रियाँ हमारे वश में हो जाएँ, हमारे मन को भ्रमित न करें, तब कर्मयोग सिद्ध होने लगता है। अगर कर्म में आसक्ति न हो, बल्कि अनासक्त होकर कर्म किया जाए तो वह कर्मयोग कहलाता हैं। इस प्रकार इन्द्रिय-निग्रह और अनासक्ति, ये कर्मयोग के दो चरण होते हैं। हम लोग जीवन में कर्म करते रहते हैं, लेकिन उस कर्म में अपनी वासनाओं, इन्द्रियों और मन को संभाल नहीं पाते, जिसका दुष्परिणाम हमें भुगतना पड़ता है। इसलिए श्रीकृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं कि इन्द्रिय-संयम तथा अनासक्ति, दोनों को कर्म से जोड़ो। अगर ये दोनों कर्म से जुड़ जाएँ, तो कर्म बंधन का कारण नहीं, बल्कि उत्थान और मोक्ष का कारण बनेगा। श्रीकृष्ण आगे कहते हैं –

मयि सर्वाणि कर्माणि सन्न्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वर:॥3.30॥

'अपना चित्त परमात्मा में लगाकर, सम्पूर्ण कर्मों को परमात्मा के प्रति अर्पित करके आशारहित, ममतारहित और संतापरहित होकर कर्म कर, युद्ध कर।' एक बार जब व्यक्ति में अनासक्ति की भावना आ जाती है, जब विषयों से वह अपने आंतरिक आकर्षण को दूर कर देता है, तब मन में आशा समाप्त हो जाती है, व्यक्ति ममतारहित और संतापरहित हो जाता है। आशारहित, ममतारहित, संतापरहित होना बहुत बड़ी चीज है।

जब मन का सम्बन्ध विषयों से होता हैं, तब अपेक्षाओं और वासनाओं का जन्म होता है, और उस समय ममता जागती है। ममता का मतलब हुआ मेरा अपना अस्तित्व, मेरा अपना ख्याल। अपने अस्तित्व को बचाये रखने के लिए मैं हर प्रकार का प्रयत्न करता हूँ, अपने आपको इस संसार का केन्द्रबिन्दु बना लेता हूँ। मेरा जो भी प्रयास होता है, जो भी कर्म होता है, वह मेरी ही इच्छा की पूर्ति के लिए होता है। इस प्रकार ममता स्वार्थ का रूप भी ले लेती है। आदमी अपने में ही पागल हो जाता है। यहाँ पर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्मयोग सिद्ध करने के लिए जो सूत्र दिया है, वह अनासक्ति का सूत्र है। अगर व्यक्ति आसक्त नहीं होगा तो संतापरहित, दु:खरहित, ममतारहित और फल की आशा से मुक्त हो जाएगा। कृष्ण जी आगे समझाते हैं –

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥3.34॥

हर इन्द्रिय और उसके विषय में राग और द्वेष छिपे रहते हैं। मनुष्य को राग और द्वेष, दोनों को वश में करना चाहिए, क्योंकि ये दोनों ही कल्याण-मार्ग में

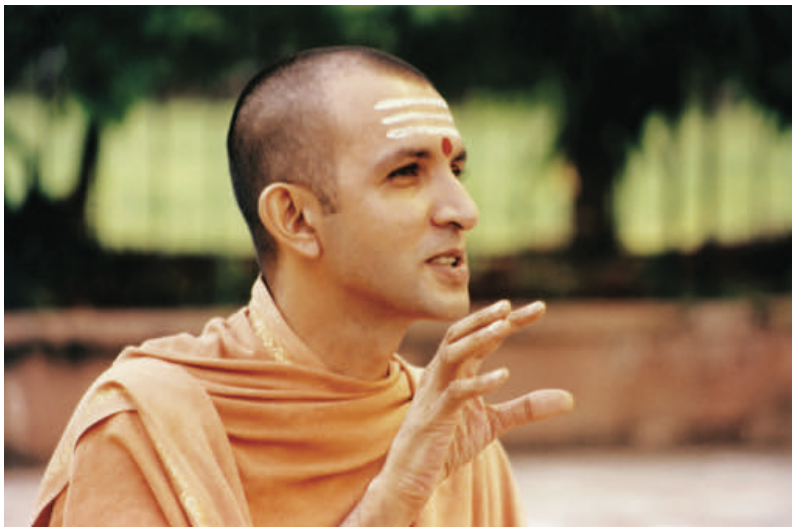

विघ्न करने वाले महान् शत्रु हैं। जब भी तुम कुछ करोगे, इनमें से एक गुण तुम्हें प्रभावित करेगा। इसीलिए अनासक्त होकर रहो। जब अनासक्त रहोगे, तब कर्म सफल होगा। लेकिन हर कर्म को प्रेरित करने वाला प्रबल तत्त्व काम है, जिसके बारे में श्रीकृष्ण सावधान करते हैं –

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च॥3.39॥
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम्॥3.40॥
एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्॥3.43॥

'अग्नि के समान कभी पूर्ण न होने वाला काम ज्ञानियों के लिए नित्य वैरी का रूप लेता है और उनके ज्ञान को ढक लेता है। इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि – ये सब काम के वास स्थान कहे जाते हैं। यह काम मन, बुद्धि और इन्द्रियों के द्वारा ही ज्ञान को ढककर जीवात्मा को मोहित करता है। इसलिए बुद्धि से परे अत्यंत सूक्ष्म और श्रेष्ठ आत्मा को जानकर, बुद्धि के द्वारा मन को वश में करके इस कामरूपी दुर्जय शत्रु को मार डाल।'

कामवासना ही व्यक्ति को राग या द्वेष से जोड़ती है, यही ज्ञान को ढक देती है। जब कामवासना ज्ञान को आच्छादित कर देती है, तब जीवात्मा उसी कामवासना से मोहित हो जाती है। इस प्रकार विषयों, इन्द्रियों और मन में कामवासना ही राग और द्वेष की जड़ होती है।

यहाँ पर कामवासना का तात्पर्य मात्र पुरुष और स्त्री के सम्बन्ध से नहीं है। यहाँ पर 'काम' का तात्पर्य मन की एक ऐसी अवस्था से है जिसमें वह एक ही चीज बार-बार सोचते रहता है। मन में कोई धुन या सनक सवार हो जाती है, जो एक ही चीज को पकड़े रहती है। वह चीज मन से मुक्त नहीं हो पाती। श्रीकृष्ण के अनुसार मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ ही इस काम के अधिष्ठान, आवास और आश्रय हैं।

गीता के कर्मयोग नामक तीसरे अध्याय में श्रीकृष्ण का अर्जुन के प्रति मुख्य संदेश यही है कि तुम अनासक्ति की भावना से जुड़कर राग, भय और क्रोध को अपने नियंत्रण में करो और कर्मयोग की भावना को लेकर चलो, ताकि तुम्हारे जीवन में जो काम और वासना की सनक है, उसे तुम रोक सको, शांत कर सको।

ज्ञानरूपी तपस्या

चौथे अध्याय में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि जिनके राग, भय और क्रोध सर्वथा नष्ट हो गए हैं और जो मुझमें प्रेमपूर्वक स्थित रहते हैं, ऐसे बहुत-से भक्त ज्ञानरूपी

तपस्या से पवित्र होकर मेरे स्वरूप को प्राप्त करते हैं। वे आगे कहते हैं कि जिसकी आसक्ति नष्ट हो गई है, जो देह-अभिमान और ममता से रहित हो गया है और जिसका चित्त निरन्तर परमात्मा के ज्ञान में स्थित रहता हैं, ऐसे यज्ञरूपी कर्म करने वाले मनुष्य के सम्पूर्ण कर्म मुझमें ही विलीन हो जाते हैं।

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिता:।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागता:॥4.10॥
गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतस:।
यज्ञायाचरत: कर्म समग्रं प्रविलीयते॥4.23॥

कृष्ण जी आगे कहते हैं कि जिस यज्ञ में अर्पण भी ब्रह्म है, हवन किए जाने योग्य द्रव्य भी ब्रह्म है, कर्ता और अग्नि भी ब्रह्म है और आहुति देने की क्रिया भी ब्रह्म है, उस ब्रह्मकर्म में स्थित रहने वाले योगी द्वारा प्राप्त किए जाने योग्य फल भी ब्रह्म ही होता है –

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥4.24॥

चौथे अध्याय का नाम ज्ञानकर्मसंन्यास-योग है, जिसमें कर्मयोग की विचारधारा ही आगे बढ़ रही है। तीसरे अध्याय के अंत में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि तुम काम को वश में करो, क्योंकि जब काम वश में हो जाता है तब राग, भय

और क्रोध पूर्णरूपेण नष्ट हो जाते हैं। एक बार जब राग, भय और क्रोध पूर्णरूप से नष्ट हो जाते हैं, तब ज्ञानरूपी तपस्या के द्वारा साधक मेरे स्वरूप को प्राप्त करते हैं। यहाँ पर भगवान ने ज्ञान को भी तपस्या कहा है, क्योंकि ज्ञान को जीवन में चरितार्थ करने के लिए प्रयास करना पड़ता हैं। ज्ञान केवल खोपड़ी की विषय-वस्तु नहीं है कि आपने किसी चीज को जान लिया और फिर खोपड़ी में ताला लगा दिया।

देखा जाए तो दुर्योधन भी कम ज्ञानी नहीं था। महाभारत युद्ध के पहले जब श्रीकृष्ण सन्धि का प्रस्ताव लेकर हस्तिनापुर गए थे, तब उनका प्रस्ताव सुनकर दुर्योधन ने कहा कि आप जो कह रहे हैं, वह सत्य है, लेकिन मेरी एक कमजोरी है। *जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः* – धर्म क्या है, मैं यह भली-भाँति जानता हूँ, लेकिन उस ओर मेरी प्रवृत्ति, मेरी रुचि नहीं है। *जानामि अधर्मं न च मे निवृत्तिः* – अधर्म क्या है, वह भी मैं अच्छे से जानता हूँ, लेकिन अधर्म मार्ग से अपने आप को मुक्त नहीं कर सकता हूँ।

ये दुर्योधन के शब्द हैं और उसकी जैसी स्थिति हमलोगों में भी दिखलाई देती है। हम लोग बहुत सारी चीजें जान तो लेते हैं, लेकिन उस ज्ञान को अपने व्यवहार में नहीं उतार पाते हैं। अच्छा क्या है, सब जानते हैं, लेकिन व्यवहार में उतारना कितना कठिन होता है। बुरा क्या है, सब जानते हैं लेकिन अपने आचरण से उस चीज को दूर करना बहुत मुश्किल हो जाता है। ज्ञान केवल एक बौद्धिक व्यायाम नहीं है। जो हम जानते हैं उसे अपने जीवन में चरितार्थ करना ही वास्तव में ज्ञान की तपस्या है, जिसके लिए मनुष्य को बहुत प्रयत्न, पुरुषार्थ और संघर्ष करना पड़ता है।

आपने अपने जीवन में कभी-न-कभी अनुभव किया होगा कि जब हम किसी एक विचार को, किसी एक ज्ञान को चरितार्थ नहीं कर पाते हैं, तब मन में द्वन्द्व उत्पन्न होता है। एक व्यापारी दुकान में बैठकर अन्न बेचता है। उसमें मिलावट होती है, लेकिन वह अन्न का पूरा गुणगान करके उसे बेचता है। बाद में उसके मन में यह विचार भी आता है, 'मैं गलत कर रहा हूँ, इसमें मिलावट है। लेकिन फिर भी मुझे कहना पड़ रहा है कि यह शुद्ध है। अगर मैं कहूँगा कि इसमें मिलावट है तो कोई नहीं खरीदेगा, मैं भूखा रह जाऊँगा।' अगर वही व्यवसायी यह कह दे कि इस अन्न में मिलावट है और इसका आधा दाम है, वह अन्न शुद्ध है, उसका पूरा दाम है, तो उसमें कोई हर्जा नहीं है। मिलावट का आधा दाम और शुद्ध का पूरा दाम। तुम्हें जो चाहिए, अपनी हैसियत के हिसाब से ले लो। अगर तुम्हें अच्छी चीज चाहिए तो अच्छी चीज लो, अगर तुम्हारी जेब हल्की है, तो मिलावट वाली चीज ले लो। दोनों चीजें उपलब्ध हैं। झूठ बोलने की कोई आवश्यकता नहीं।

व्यक्ति को गलत कार्य, गलत चिन्तन या गलत व्यवहार करने से जो ग्लानि होती है, वह मन को चोट मारती है। भले ही तुम लोग इस बात को स्वीकार करो या न करो, लेकिन सत्य यही है कि कहीं-न-कहीं असत्य हमारे मन को चोट पहुँचाता

है। अगर हम मिलावटी और शुद्ध, दोनों वस्तुएँ रखें तो क्या हर्जा है? हमारा मन तो साफ रहेगा। ग्राहक को जो खरीदना है, खरीदे। अच्छा भी उपलब्ध है और खराब भी। लेकिन खराब को अच्छा कहकर बेचना, यह ज्ञान की तपस्या नहीं, बल्कि ज्ञान का निरादर है। यहाँ पर ज्ञान को आत्मसात् नहीं, बल्कि उसे अपने जीवन से दूर किया जा रहा है।

इसीलिए यहाँ पर भगवान ने एक विशेष शब्द 'ज्ञानरूपी तपस्या' का उपयोग किया है। जिस तरह किसी दुर्लभ चीज को प्राप्त करने के लिए तुम साधना करते हो, उसी प्रकार ज्ञान को सिद्ध करने के लिए भी साधना की आवश्यकता पड़ती है। जब ज्ञान सिद्ध हो जाता है, तब आसक्ति सर्वथा नष्ट हो जाती है।

आगे श्रीकृष्ण कहते हैं कि जिसकी आसक्ति पूर्ण रूप से नष्ट हो गई है और जो देहाभिमान एवं ममता से रहित हो गया है, उसके द्वारा सम्पादित किए गए सभी कर्म ईश्वर में ही विलीन हो जाते हैं। यहाँ पर ज्ञान की प्राप्ति के साथ फिर से यह भाव आता है कि न मैं कर्ता हूँ, न भोक्ता। कर्ता-भोक्ता कोई और है। इसलिए कृष्ण जी कहते हैं कि जब तुम ज्ञान को प्राप्त करके काम का आवरण हटा देते हो, तब तुम्हारे द्वारा किए गए सभी कर्म यज्ञस्वरूप होकर ईश्वर को स्वत: अर्पित हो जाते हैं। फिर वे आगे कहते हैं –

योगसन्न्यस्तकर्माणं ज्ञानसञ्छिन्नसंशयम्।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय॥4.41॥
तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मन:।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत॥4.42॥

'जिसने कर्मयोग की विधि को सिद्ध करके, समस्त कर्मों को परमात्मा को अर्पित कर दिया है और जिसने ज्ञान द्वारा, विवेक द्वारा समस्त संशयों का नाश कर दिया है, ऐसे व्यक्ति को कर्म संसार से नहीं बाँधते। इसलिए तू हृदय में स्थित इस अज्ञानजनित संशय को ज्ञानरूपी तलवार द्वारा छिन्न कर समत्व रूपी कर्मयोग में स्थित हो जा।'

यहाँ पर दो चीजें दिखलाई दे रही हैं। पहली, श्रीकृष्ण अर्जुन को कर्म करने के लिए प्रेरित कर रहे हैं, और दूसरी, अर्जुन को कर्म से आसक्ति हटाने के लिए कह रहे हैं। कर्म करो और साथ ही कर्म से अपनी आसक्ति को हटा दो। जब कर्म से तुम्हारी आसक्ति हट जाएगी, तब मन, इन्द्रियाँ और बुद्धि शांत हो जाएँगे। फिर तुम्हारा चित्त संसार के विषयों और आकर्षणों में न लगकर, आत्मतत्त्व में केन्द्रित हो जाएगा। जब तुम उस एकाग्रता को, उस स्थिरता को प्राप्त कर लोगे, तब तुम्हारे समस्त कर्म ईश्वर को ही समर्पित हो जाएँगे।

– 17 फरवरी 2012, शिवालय, मुंगेर

स्वास्थ्य और यौगिक उपचार

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

रोग या बीमारी एक ऐसी दशा है जिसका अनुभव शरीर में किया जाता है, पर उसका स्रोत प्राय: मन में होता है। योग के अनुसार बीमारी हमारी अन्तश्चेतना में दबी रहती है, लेकिन चूँकि हम उसके प्रति संवेदनशील नहीं होते, अत: उसकी अनुभूति मन और इन्द्रियों के जरिये शरीर में होती है। सभी रोग, चाहे वे पाचन सम्बन्धी हों या रक्त परिसंचरण सम्बन्धी, असावधानी और स्वास्थ्य के नियमों के प्रति लापरवाही से ही पैदा होते हैं।

बीमारियों के निदान में योग की भूमिका

हमारे आधुनिक समाज में कई प्रकार के दैहिक और मानसिक रोग व्याप्त हैं। औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप अधिकांश भयानक बीमारियाँ, जैसे नर्वस डिप्रेशन, हृदय रोग, कैंसर आदि उत्पन्न हुई हैं। आज जो नई बीमारियाँ पैदा होती जा रही हैं, उनका कारण है – परेशान और चिन्ताग्रस्त मन। कोई दवा इन रोगों का सामना नहीं कर सकती। तुम अगर इसके लिये समाज को कोई नई जीवन पद्धति देना चाहो तो यह कार्य एक वर्ष में होने का नहीं, बीस वर्षों में भी नहीं होगा। यह रोग आधुनिक जीवन के अभिन्न अंग बन चुके हैं। इन समस्याओं के समाधान का एक ही रास्ता दिखाई देता है और वह है योग। इसलिये पश्चिमी समाज ने योग को आज एक अनिवार्य आवश्यकता के रूप में अपना लिया है। उनके पास उनकी अपनी संस्कृति है, उनका अपना धर्म है और वे लोग

बड़े स्वाभिमानी हैं, लेकिन जीवन में जो समस्याएँ आ रही हैं उन सबका योग प्रभावशाली समाधान दे रहा है।

वही समस्याएँ अब भारत में भी दिनों-दिन बढ़ रही हैं। तुम्हारे दादा-परदादा उतना नहीं सोचते थे, जितना तुम सोचते हो। दो-तीन पीढ़ियों की तुलना में मन की गति आज तेज हो गई है, इसलिये आज हमारे रोग भी हमारे पूर्वजों की तुलना में अलग होंगे। शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक समस्याओं से पीड़ित लोगों के लिये, जिन्हें मेडिकल चिकित्सा ने असाध्य घोषित कर दिया है, योग के पास बहुमूल्य क्रियायें उपहार में देने योग्य हैं। इनसे जिन्दगी में नई आशा जागती है।

आज के सभ्य समाज में मनुष्य की कुंठायें और स्नायु रोग बहुत बढ़ गये हैं। भौतिक स्तर पर हम लोग प्रदूषित और असन्तुलित वातावरण के शिकार हैं। हमारे यहाँ प्रकृति के नियमों को आदर नहीं दिया जाता है। हमारा शरीर वायुमण्डल से बहुत प्रकार के विषैले जीवाणुओं को अन्दर ग्रहण करता है । भोजन द्वारा भी यह होता है। इन संचित अशुद्धियों को निष्कासित करने के लिये कोई प्रक्रिया तो अवश्य होनी चाहिये। योग ही एकमात्र विज्ञान है जिसने यह साधन प्रस्तुत किया है। हठयोग में ऐसे अभ्यास हैं जिनके द्वारा पूरे उदर और आहार नली की भीतरी सफाई हो जाती है। प्राणायाम श्वसन संस्थान और नाड़ी मण्डल को शुद्ध और सन्तुलित करता है। आसन, मुद्रा और बन्ध शरीर के ऊर्जा अवरोधों को मुक्त करते हैं और शरीर में जीवनी शक्ति तथा प्रतिरोधक शक्ति बढ़ाने में सहायता देते हैं।

दीर्घकालीन व मूलभूत रोगों को हठयोग द्वारा सफलतापूर्वक ठीक किया जा सकता है। जो बीमारियाँ शुद्ध रूप से शारीरिक हैं, उन्हें आसन, प्राणायाम और षट्कर्म द्वारा सीधे दुरुस्त किया जा सकता है। यदि रोग का कारण शरीर में न होकर मन की गहराई में हो तब तो हठयोग के साथ-साथ राजयोग का अभ्यास करना होगा। कैंसर जैसे रोग मन में पैदा होते हैं और शरीर पर प्रकट होते हैं, एक लम्बे अर्से के बाद। जीवन का हर अनुभव हमारे व्यक्तित्व में समन्वित हो जाता है और उसी प्रकार क्रियाशील हो जाता है, जैसे जमीन में बोया गया बीज। वह देखने में नहीं आता मगर अन्दर में तब तक बढ़ता ही रहता है जब तक कि वह शरीर के स्तर पर प्रकट न हो जाये। शरीर में जो कुछ होता है, उसका मन पर असर होता है और उसी प्रकार मन जिससे प्रभावित होता है वह शरीर पर भी असर करता है। यही बात दमा, कैंसर और मधुमेह जैसे घातक रोगों में भी लागू होती है।

पच्चीस वर्षों से लगातार दमा व मानसिक अशान्ति का शिकार व्यक्ति भी 15-20 दिनों के योगाभ्यास से ही बहुत सुधार का अनुभव करता है। वे लोग भले ही इसे चमत्कार समझते हैं, लेकिन यहाँ यह बात विचारणीय है कि योग के अभ्यास इतने शक्तिशाली क्यों हैं? इसलिए कि वे अचेतन मन के स्तर पर अपना काम करते हैं और वहाँ से रोग के वास्तविक मूल कारण को निकाल फेंकते हैं।

चूँकि रोग शारीरिक या मानसिक, किसी भी कारण से पैदा हो सकते हैं, इसलिये श्रेयस्कर होगा कि राजयोग और हठयोग का अभ्यास साथ-साथ किया जाये। जैसे किसी स्थान की आबोहवा अनुकूल न पड़ने के कारण भी किसी व्यक्ति को एलर्जी हो सकती है और परिणामस्वरूप बाद में शायद वही दमा के रोग के रूप में परिणित हो जाये, अथवा हो सकता है कि बचपन से मन में चले आ रहे वैचारिक दबाव आगे चलकर दमा के रूप में प्रकट हो जायें तथा रोग का कारण बनें।

योग पर अनुसंधान और प्रयोग

असंख्य शोधों ने यौगिक क्रियाओं के हृदय मण्डल, श्वसन मण्डल और अन्त:स्रावी मण्डलों पर पड़ने वाले सकारात्मक प्रभावों पर प्रकाश डाला है। इसलिये बहुत-से चिकित्सक और उपचारक अब विभिन्न उपचार पद्धतियों के साथ-साथ यौगिक क्रियाओं को अपने रोगियों की बीमारियों की रोकथाम के लिये उपयोग में लाने लगे हैं। प्राणायाम और ध्यान के अभ्यास के बारे में शोधकार्यों की रिपोर्ट है कि विभिन्न प्रकार के मानसिक रोगों, जैसे निराशा, भावनात्मक अस्थिरता और स्नायविक रोगों में उनका अत्यन्त ही दूरगामी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

भारत के बाहर कई देशों में हिंसक अपराधियों को योग सिखाया जा रहा है। पागलखानों में मनोरोगियों को योगाभ्यास सिखाया जा रहा है। पुलिस और सेना के जवानों, वाणिज्य अधिकारियों, विद्यार्थियों, नशाग्रस्त लोगों और अस्पतालों के मरीजों को अब योग सिखाया जाता है। उन सभी स्थानों पर यह पाया गया है कि यह कार्य अच्छी तरह चल रहा है और आशातीत सफलता प्राप्त हुई है।

मन की भूमिका

अपने आध्यात्मिक जीवन में मैंने देखा है कि यदि मानसिक शक्तियाँ रोग के कारण की चिकित्सा कर सकें तो ठीक है, अन्यथा अगर वे लक्षणों या संकेतों का उपचार ही करती हैं तो उनका कोई सही उपयोग नहीं। वह रोग या दु:ख तो उसी रूप में पुन: लौट आयेगा। हाँ, लेकिन अगर तुम व्यक्ति के सोचने की सम्पूर्ण दिशा को बदल सको, उसकी चेतना को रूपान्तरित का सको, सम्पूर्ण मन और दिमाग को एक नवीन स्तर पर नया रूप दे सको, तभी यह माना जायेगा कि मानसिक शक्तियाँ उपयोगी हैं।

मेरा ख्याल है कि हर आदमी मन से बीमार है, शरीर से नहीं। जीवन में मन की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसके लिये हम क्या करें? यह हमारी पहुँच से बस थोड़ा ही परे है, लेकिन हमें पता नहीं कि उसे कैसे पकड़ा जाये। हम नहीं जानते कि मन क्या चीज है, उसके बारे में हम बिल्कुल अज्ञानी हैं। क्रोध, मनोविकार या विचार को ही हम मन समझ लेते हैं। मन एक शक्ति है, ठीक उसी प्रकार जैसे बिजली एक शक्ति है। जैसे बिजली को हम एक प्रकाश के रूप में देख सकते हैं,

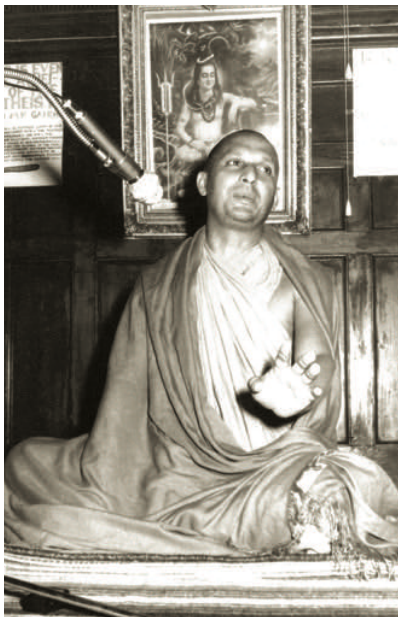

वैसे ही मन भी एक शक्ति है जिसे हम क्रोध, मनोविकार या विचार के रूप में कार्यरत देख सकते हैं।

मन को पकड़ने के लिये एकाग्रता का अभ्यास करना होगा। इससे तुम्हें कई आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त हो सकते हैं। ये तुम्हारे बचपन के सांकेतिक अनुभव हैं। वास्तव में हमारे रोग, व्यवहार और विचार प्रणाली, ये सब हमारे बचपन के ही कारण हैं। यदि तुम इसके भी पीछे अतीत में जाओगे तो वे सब माँ के गर्भ के संस्कार हैं जो तुम्हारे जन्म से पहले प्राप्त हुये थे। तुम कोई पहली बार ही पैदा नहीं हो रहे हो। चेतना या आत्मा बार-बार अवतार लेती है। वह हमेशा विकसित होती जा रही है। वह हमेशा एक से दूसरे घर को बदलती जा रही है । बीमारियों का मूल कारण बहुत गहराई में विद्यमान है, लेकिन एकाग्रता द्वारा, धारणा के अभ्यास द्वारा हम बीमारियों को जान सकते हैं, समझ सकते हैं और दूर कर सकते हैं।

मन बहुत शक्तिशाली है। भला और बुरा, दोनों का मूल कारण है। संकट और सन्तुलन, वह कुछ भी पैदा कर सकता है। वही मन एक समय आत्महत्या करने को तैयार हो जाता है और दूसरे ही क्षण ईश्वर दर्शन करना चाहता है। इसका मतलब हुआ कि मन के दो स्तर हैं – अप्रशिक्षित मन और प्रशिक्षित मन। योगी का मन प्रशिक्षित होता है तथा पशु मन अप्रशिक्षित होता है। मनुष्य में पशु, इन्सान और भगवान तीनों हैं। विचारों और भावनाओं को प्रशिक्षित करने से मनुष्य के कार्य नियन्त्रित होते हैं।

जब कोई विचार मन में आता है तो उस समय उसके प्रति तुम्हारी धारणा का बहुत अधिक महत्त्व है। विचार के आते समय अगर उससे तुम्हारा कोई सम्पर्क या आसक्ति न हो अर्थात् अगर तुम विचार के प्रति बिल्कुल तटस्थ या उदासीन रहोगे तो वह वहीं समाप्त हो जायेगा। विचार के प्रति साक्षी भाव, द्रष्टा भाव रखने पर वह गायब हो जाता है, लेकिन विचारों के साथ तुम्हारा सम्पर्क, साझेदारी या भावनात्मक स्वीकृति हो, भावनात्मक रूप से अगर तुम विचार से प्रभावित हो जाओगे, चाहे सकारात्मक रूप से हो या नकारात्मक, तो वह विचार पुनरावृत्ति के लिये मन में वापस गहराई में चला जायेगा।

तनावों का प्रबन्धन

तनाव तीन प्रकार के होते हैं – स्नायविक, मानसिक और भावनात्मक। स्नायविक तनाव ज्यादा दौड़धूप करने से हुआ हो तो तुम्हें कुछ और विश्राम की जरूरत है। अगर व्यायाम के अभाव में तनाव हुआ हो तो जीवन को और सक्रिय बनाओ। अति चिन्तन और ख्वाब देखने के कारण तनाव मानसिक हो तो तुम्हें कठिन परिश्रम करना चाहिये, कर्मयोग करना चाहिये। इससे मन की शक्ति को स्वस्थ दिशा-प्रवाह मिलेगा। मानसिक तनाव तो तब आते हैं जब तुम्हारे पास सोचने को समय अधिक होता है। प्रेम, घृणा, मृत्यु आदि से उत्पन्न भावनात्मक तनाव दूर करने में ज्यादा कठिनाई होती है। लेकिन भक्तियोग के ठीक और व्यवस्थित अभ्यास से इसे दूर किया जाता है। इन तनावों को दूर करने के लिये अध्यात्म पथ पकड़ना चाहिये।

मानसिक और प्राणिक शक्ति में संतुलन

साधारण तौर पर अशान्ति का कारण है अतिशय सोचना और इच्छा करना। यह इस बात का सूचक है कि तुम्हारा दिमाग काबू के बाहर हो गया है। इस स्थूल शरीर में दो प्रकार की शक्तियाँ हैं। एक को कहते हैं मानसिक शक्ति और दूसरी को प्राणिक शक्ति। जब तुम बेचैनी का अनुभव करते हो तब समझना कि तुम्हारी मानसिक शक्ति ऊँची है और प्राणशक्ति नीची, और दोनों में असन्तुलन आ गया है। ज्ञानेन्द्रियाँ बहुत सक्रिय हैं, और कर्मेन्द्रियाँ अल्प सक्रिय। हठयोग में हम लोग इसे इड़ा और पिंगला के बीच असन्तुलन कहते हैं। आधुनिक विज्ञान की भाषा में इसे कहते हैं अनुकम्पी और परानुकम्पी नाड़ी मण्डल में असन्तुलन। मानसिक शक्ति की इस अधिकता को सन्तुलित करने के लिये राजयोग के ध्यान का अभ्यास अधिक करना चाहिये। सबसे अच्छा उपाय है – मन्त्र का जप करना। मन्त्र का जप मानसिक रूप से, माला के साथ या बिना माला के किया जा सकता है। श्वास के साथ मिलाकर भी जप किया जाता है। इसके अभ्यास से मानसिक शक्ति का बहिर्गमन बन्द होगा।

अगर तुम यह नहीं कर सकते तो इस समस्या के निदान के लिये दूसरा उपाय भी है। शरीर में ऊर्जा के स्तर को ऊपर उठाओ। तुम या तो मानसिक शक्ति की मात्रा की जाँच करो अथवा प्राणशक्ति की मात्रा बढ़ाओ। हठयोग, राजयोग, क्रियायोग, कर्मयोग या वास्तव में योग के प्रत्येक अंग के अभ्यास का उद्देश्य इसी सन्तुलित स्थिति को लाना है। इसके साथ ही शरीर के एक स्तर पर कुछ विशेष हार्मोन स्रवित होते हैं जो अशान्ति पैदा करते हैं। इनमें एड्रिनलिन और टेस्टोस्टेरॉन नामक हार्मोन सबसे अधिक विघ्नकारक हैं। यदि इनके प्रवाहों को ठीक से नियन्त्रित कर लिया जाये तो अशान्ति उत्पन्न करने वाले शारीरिक उपद्रवों को दूर किया जा सकता है।

आसन, प्राणायाम और ध्यान के प्रतिदिन नियमित अभ्यास से हार्मोन के स्राव में नियन्त्रण आयेगा, मानसिक और प्राणिक शक्तियों में एक स्वाभाविक सन्तुलन होगा और उद्विग्नता जैसी अनेक समस्यायें उत्पन्न नहीं होंगी। योग विज्ञान के अनुसार सम्पूर्ण शारीरिक और मनोवैज्ञानिक ढाँचे की व्यवस्थित रूप से पूरी मरम्मत की जा सकती है। योग क्रियाओं और ध्यान के अभ्यास द्वारा हानिकारक और निषेधात्मक प्रभावों को निकाल बाहर किया जा सकता है। परिणामस्वरूप जैसे-जैसे लोग अपने निजी व्यक्तित्व का रूपान्तरण करने, अपने मनोदैहिक प्रसाधन को अनन्त बनाने और व्यक्तिगत सीमाओं से ऊपर उठने के लिये योग को अपनायेंगे, वैसे-वैसे मनुष्य जाति की नस्ल स्थायी और क्रमबद्ध रूप से सुधरेगी।

जिन्दगी में अगर कोई चीज है तो वह है खुशी, आनन्द और मस्ती। दु:ख है कहाँ आखिर? कष्ट, पीड़ा, दु:ख, तकलीफें तो पशु-योनि की चीजें हैं, वे पशु-चेतना के अनुभव हैं। चेतना का विकास होने पर दु:ख कहाँ है? और अगर कोई दु:ख भोग रहा है तो समझना चाहिये कि वह आध्यात्मिक स्थिति में नहीं पहुँच पाया है, बेचारा नादान आदमी!

बोलै नहीं तो गुस्सा मरै

एक घर में स्त्री-पुरुष दो ही जन थे और दोनों आपस में नित्य ही लड़ा करते थे। एक दिन उस स्त्री ने अपनी पड़ोसन के पास जाकर कहा – बहन! मेरे स्वामी का मिजाज बहुत चिड़चिड़ा है, वे जब-तब मुझसे लड़ते ही रहते हैं और इस तरह हमारी बनी रसोई बेकार चली जाती है।

पड़ोसन ने कहा – अरे! इसमें कौन सी बात है? मेरे पास ऐसी अचूक दवा है कि जब तुम्हारे पति तुमसे लड़ें, तब तुम दवा को अपने मुँह में भर कर रखा करो। बस, वे तुरन्त चुप हो जायेंगे।

यह कहकर पड़ोसन ने शीशी भरकर दवा दे दी। उस स्त्री ने दो-तीन बार पति के क्रोध के समय दवा की परीक्षा की और उसे बड़ी सफलता मिली। तब तो उसने खुशी-खुशी जाकर पड़ोसन से कहा – बहन! तुम्हारी दवा तो बड़ी कीमिया है! उसमें क्या-क्या चीजें पड़ती हैं, बता दो तो मैं भी बना रखूँ।

पड़ोसन ने कहा – बहन! शीशी में साफ जल के सिवा और कुछ भी नहीं था। काम तो तुम्हारे मौन ने किया। मुँह में पानी भरा रहने से तुम बदले में बोल नहीं सकीं और तुम्हें शांत पाकर उनका क्रोध भी जाता रहा।

एक मौन सब दुख हरै, बोलै नहीं तो गुस्सा मरै।

मन को कैसे शान्त करें?

स्वामी निरंजनानन्द सस्वती

चंचलं हि मन: कृष्ण – महाभारत के युद्ध से पहले अर्जुन ने भी श्रीकृष्ण से यही प्रश्न किया था और अर्जुन के बाद हर काल में समाज में लोग यही प्रश्न करते आये हैं। आज भी यही प्रश्न हो रहा है और हजार साल के बाद भी यही प्रश्न पूछा जायेगा, मन को कैसे संभालें? इसका उत्तर कृष्ण जी ने गीता में दिया है। कछुआ जिस प्रकार अपने अंगों को अपने कवच में समेटता है उसी प्रकार तुम अपनी इन्द्रियों को अपने आप में समेटो, तब जाकर मन शान्त होगा।

एक उदाहरण देता हूँ। मान लो हम एक लम्बी रस्सी का एक छोर किसी चीज से बाँध देते हैं और दूसरा छोर अपने हाथ में रख लेते हैं। अब हम अपने हाथ को ऊपर-नीचे हिलाते हैं तो रस्सी में एक तरंग जाती है जिसे विज्ञान की भाषा में 'स्टेंडिंग वेव' कहते हैं। रस्सी का एक छोर विषय में, पदार्थ में पकड़ा हुआ है और दूसरे छोर को हमने पकड़ा है। इसी तरह हमारे मन का सम्बन्ध विषयों से होता है। जब आप एक अच्छी गाड़ी देखते हो तो मन में होता है कि यह गाड़ी हमें लेनी चाहिये। एक विषय से आपका सम्बन्ध हुआ, फिर मन में एक इच्छा प्रकट हुई और इच्छा के बाद एक कार्य सम्पन्न हुआ। सम्बन्ध, इच्छा, कार्य – यह क्रम है। सम्बन्ध मन को विषयवस्तु से जोड़ता है, जुड़ने के बाद विषयवस्तु को पाने की इच्छा उत्पन्न होती है, इच्छा उत्पन्न होने के बाद उसको कार्यान्वित करने के लिये

कर्म किया जाता है। इस तरह तीनों की एक कड़ी बनी हुई है। अब आप मन को शान्त करना चाहो तो क्या करोगे?

कृष्ण जी ने कहा, यह जो सम्बन्ध है इसको तुम काटो। कुछ समय के लिये, जीवन भर के लिये नहीं। अब रात को सोते हो तो सम्बन्ध कटता है कि नहीं। सोते समय यह थोड़े ही मालूम रहता है कि मैं किसी का पति हूँ, मैं किसी की पत्नी हूँ, मैं किसी का बेटा हूँ, मैं अफसर हूँ। मालूम रहता है क्या? कहाँ गया सम्बन्ध उस समय? वहाँ पर एक विच्छेद हुआ है। त्याग नहीं हुआ है, आपने छोड़ा नहीं है, बस एक विच्छेद हुआ है। जगने पर फिर वह सूत्र जुड़ जायेगा। जैसे रात्रि के समय कुछ देर के लिये आप अपने सम्बन्धों से स्वयं को दूर कर लेते हो कुछ वैसी ही घटना है जब कछुआ अपने अंगों को अपने कवच के भीतर समेट लेता है। जब चलना होता है तब फिर अपने अंगों को निकालकर, हाथ-पैर मारकर चलता है। गीता में कृष्ण जी ने यही बात कही कि मन को शान्त करने का यही सबसे सरल तरीका है। इसके लिए रात को याद करो। दिन में तो बोलोगे कि हम कैसे अपने आपको संसार से अलग करें, चिन्ता है, परेशानी है, तकलीफ है, समस्या है, संघर्ष है, कैसे हम इन सबसे अपने आपको मुक्त करें? लेकिन जब रात को सोते हो तो इन सब परेशानियों से मुक्त हो जाते हो न! अब यही चीज हमें जाग्रत अवस्था में करनी है और यह किया जाता है ध्यान के द्वारा। अपनी इन्द्रियों को बाहर के सम्बन्ध से हटाना और अपने में स्थिर करना – यह प्रत्याहार और धारणा के द्वारा संभव हो पाता है। यह सबसे सरल और पारम्परिक तरीका है जो हमारे ऋषि-मुनियों ने, हमारे शास्त्रों ने हम सबको आज तक बतलाया है।

दूसरा तरीका जो स्वामी निरंजन बतलाते हैं मन को शान्त रखने के लिए वह है पहला यम और पहला नियम। पहला यम क्या है? अगर किसी से पूछो यम और नियम क्या है तो जो पतंजलि महाराज ने योग सूत्रों में बात बोली है, उसी को दुहरा देते हैं। लेकिन याद रखना कि महर्षि पतंजलि का जो यम और नियम है वो अलग सिलेबस है। प्राइमरी स्कूल का सिलेबस अलग होता है, सेकेन्ड्री स्कूल का सिलेबस अलग होता है, कॉलेज-यूनिवर्सिटी का सिलेबस अलग होता है, शिक्षा एक प्रकार की नहीं होती है। उसी तरह यम और नियम भी एक प्रकार के नहीं होते हैं। महर्षि पंतजलि ने जो कहा वह कॉलेज स्तर की शिक्षा है। वह आपके लिये नहीं है। अब बोलो, हमेशा सत्य बोल पाओगे क्या? अहिंसा का पालन कर पाओगे क्या? अस्तेय और अपरिग्रह कर पाओगे क्या? ब्रह्मचर्य का पालन कर पाओगे क्या? जीवन में संतोष है क्या? तपस्या करते हो क्या? स्वध्याय करते हो क्या? नहीं, कुछ नहीं।

हमारे योग शास्त्रों के प्राइमरी, सेकेन्ड्री आदि स्तर के यम-नियमों को देखा जाय तो फिर मानसिक परिवर्तन का एक क्रम स्पष्ट रूप से दिखलाई देता है। प्राइमरी क्लास में जो पहला यम आता है वह है मन:प्रसाद। यह चित्त को शान्त करने

का सबसे अच्छा उपाय है, और मैं अभी तक इस पहले यम का ही पालन करता हूँ। मन:प्रसाद का मतलब मन का प्रसन्न होना, मुस्कुराते रहना। जब मुस्कुराओगे तो तनाव नहीं है, जब मुस्कुराओगे तो चिन्ता नहीं है, जब मुस्कुराओगे तो परेशानी नहीं है। जब नहीं मुस्कुराओगे तो दुनिया का पूरा भार तुम्हारे कंधों पर है, और जब मुस्कुराओगे तो दुनिया का भार भी अगर सिर पर रहे तो पंख जैसा हल्का प्रतीत होता है। मन:प्रसाद आन्तरिक प्रसन्नता का, अपने मन को शान्त करने का, सम्भालने का तरीका है । प्रसन्नता मनुष्य के लिये कवच का काम करता है, यह दु:ख के बाणों से मनुष्य को बचाता है। जो प्रसन्नता का कवच पहनता है वह दु:ख के बाणों के प्रहार से मुक्त रहता है।

इसी तरह प्राइमरी क्लास का पहला नियम है जप। माला लेकर बैठो और मंत्र जप करो। इसके पीछे मनोवैज्ञानिकता क्या है? 24 घंटे तो तुम संसार से जुड़े हो, जप के दौरान कम-से-कम दस मिनट ही सही, अपनी चेतना को, अपनी भावना को संसार से अलग करके अपने आप में तो स्थिर कर पाओगे, अपने आराध्य का तुम चिंतन कर पाओगे। दस मिनट के लिये तुम्हारा सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है संसार के साथ, और सम्बन्ध जुड़ता है अपने साथ। जब संसार से सम्बन्ध-विच्छेद होता है तो मन की शान्ति का अनुभव होता है, जब तार कहीं और से जुड़ता है तब वहाँ से ऊर्जा का अनुभव होता है, तृप्ति-संतुष्टि का अनुभव होता है। इसलिये मन:प्रसाद और जप, ये योग की प्राइमरी क्लास के पहले यम और नियम माने गये हैं। इनके अभ्यास से भी हम अपने मन की विचलित अवस्थाओं से स्वयं को मुक्त कर सकते हैं, मन की गतिविधियों से अपने आपको अलग करके मन का द्रष्टा बन सकते हैं। अब कृष्ण जी के हिसाब से आप प्रत्याहार का अभ्यास करो या स्वामी निरंजन के हिसाब से आप प्रसन्न रहो, शान्ति पाने के दोनों उपाय चलेंगे।

– 26 जून 2016, गंगा दर्शन

योग की शक्ति

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

माया मन का भाव है,
माया विचारों का रूप धरकर आती है
और साधक का उत्साह भंग करती है।
अत: साधना की पकड़
किसी भी हालत में नहीं छोड़ना,
मन अच्छे-बुरे सुझाव देता रहेगा।
योग की शक्ति तुममें है
जो साधना से प्रकट होगी।
साधना भर करना तुम्हारा काम।
सत्य का स्वरूप एक भी,
और अनेक भी
अपनी दृष्टि बदलो,
विचार बदलो।
स्वमानित सुख-दु:ख
के बंधनों से
ऊपर उठो,
क्योंकि
आत्म-तत्त्व
इन सबसे
अछूता
और परे है।

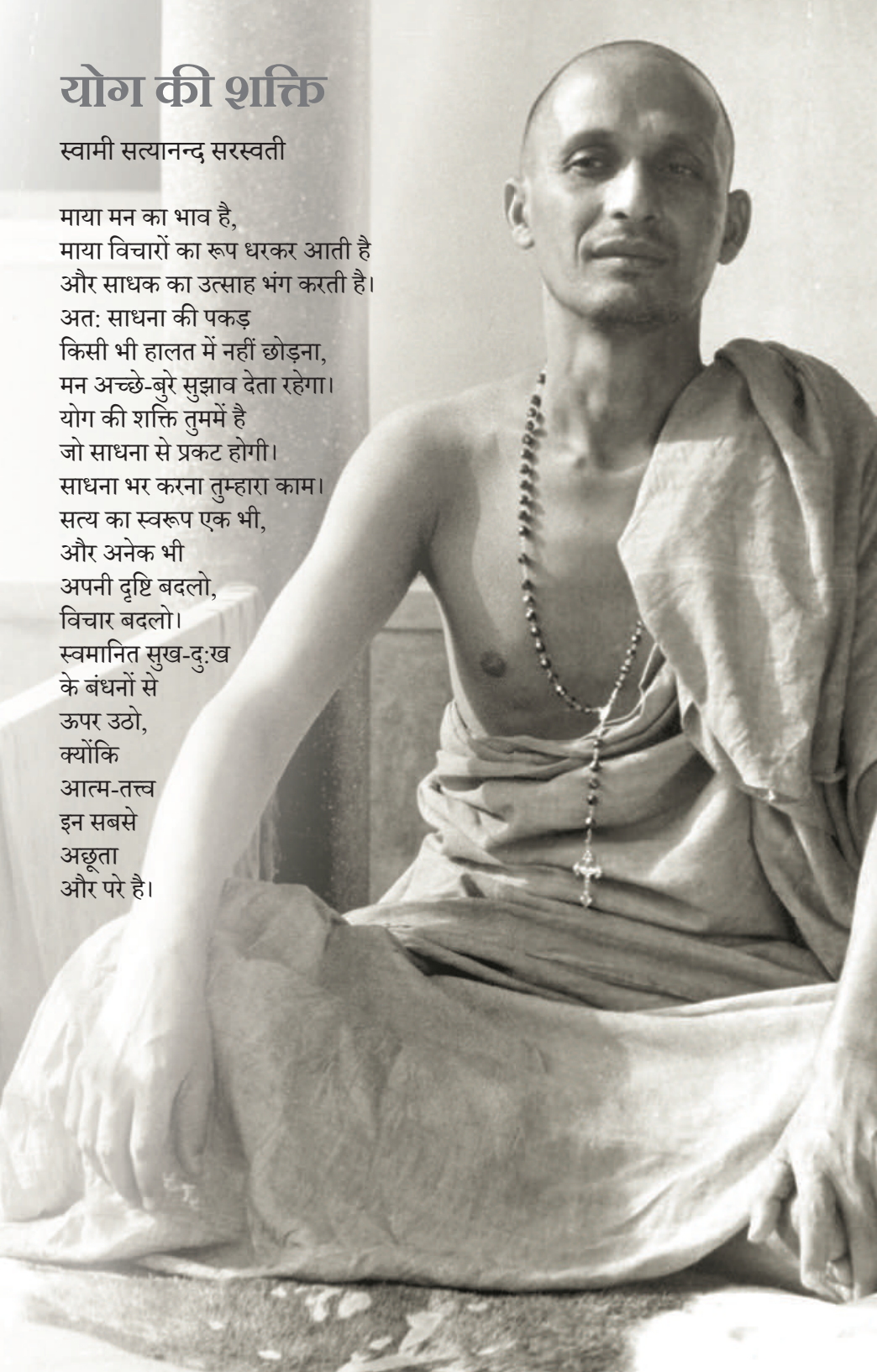

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

श्रीरामचरितमानस बालकाण्ड – 3

अवलोकितेश्वर

पृष्ठ 198, ISBN: 978-81-946102-6-7

श्री स्वामी सत्यानन्द जी की प्रेरणा व स्वामी निरंजनानंद सरस्वती के कृपापूर्ण मार्गदर्शन में श्रीरामचरितमानस के बालकाण्ड भाग तीन का शब्दानुवाद किया गया है। बालकाण्ड के इस तृतीय भाग में राम अवतार के कारणों का वर्णन विस्तृत रूप से किया गया है। प्रभु राम की इन सुन्दर, प्रेरणादायी एवं दिव्य लीलाओं को जानकर हम अपने जीवन में उस उच्च चेतना या भगवत् सत्ता के साथ प्रेमपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर दिव्य जीवन का अनुभव अपने जीवन में कर सकते हैं।

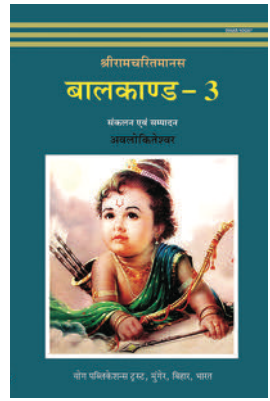

नया प्रकाशन

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें –
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
दूरभाष : 91–6344–222430, 9162783904

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

वेबसाइट और एप्प

www.biharyoga.net
बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद
बिहार योग परम्परा की समस्त प्रकाशित कृतियाँ *satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर तथा *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में प्रस्तुत हैं।

यौगिक जीवनशैली साधना
biharyoga.net तथा *satyamyogaprasad.net* पर स्वस्थ जीवन हेतु यौगिक जीवनशैली साधना उपलब्ध है।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/
योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)
- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. MGR-01/2020-23
  Office of posting: Ganga Darshan TSO
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

सभी ग्राहकों के लिए महत्त्वपूर्ण सूचना

आत्मस्वरूप

हरि: ॐ

हमें यह सुखद समाचार देते हुए हर्ष हो रहा है कि जनवरी 2021 से मासिक योगा (अंग्रेज़ी) तथा योगविद्या (हिन्दी) पत्रिकाएँ सभी ग्राहकों, सहयोगियों, योगप्रेमियों, भक्तों तथा आध्यात्मिक साधकों के लिए निम्नांकित वेबसाइटों पर नि:शुल्क उपलब्ध रहेंगी –

www.satyamyogaprasad.net

www.biharyoga.net

वर्तमान कोरोनावायरस महामारी और उससे उत्पन्न अनिश्चितता के कारण योगा और योगविद्या की प्रकाशित प्रतियाँ 2021 में ग्राहकों के लिए उपलब्ध नहीं रहेंगी। इसलिए 2021 में इन पत्रिकाओं के लिए नए सदस्यता आवेदन या पुरानी सदस्यता को बढ़ाने के आवेदन स्वीकार **नहीं** किए जा रहे हैं। अत: इन पत्रिकाओं के लिए सदस्यता आवेदन **मत** भेजिए।

पत्रिकाओं सम्बन्धी परिस्थिति की जानकारी आपको समय-समय पर मिलती रहेगी।

इस बीच श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती और श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती की शिक्षाओं को ग्रहण कर उन्हें अपनी दिनचर्या में आत्मसात् एवं अभिव्यक्त कीजिये ताकि आपका जीवन उदात्त और उन्नत बन सके।

आपके स्वास्थ्य, कल्याण और शांति के लिए श्री स्वामी सत्यानन्द जी के आशीर्वाद सहित,

ॐ तत्सत्

सम्पादक